रवीन्द्रनाथ ठाकुर



क्षुधित पाषाण

तथा अन्य कहानियां

रवीन्द्र रचनावली



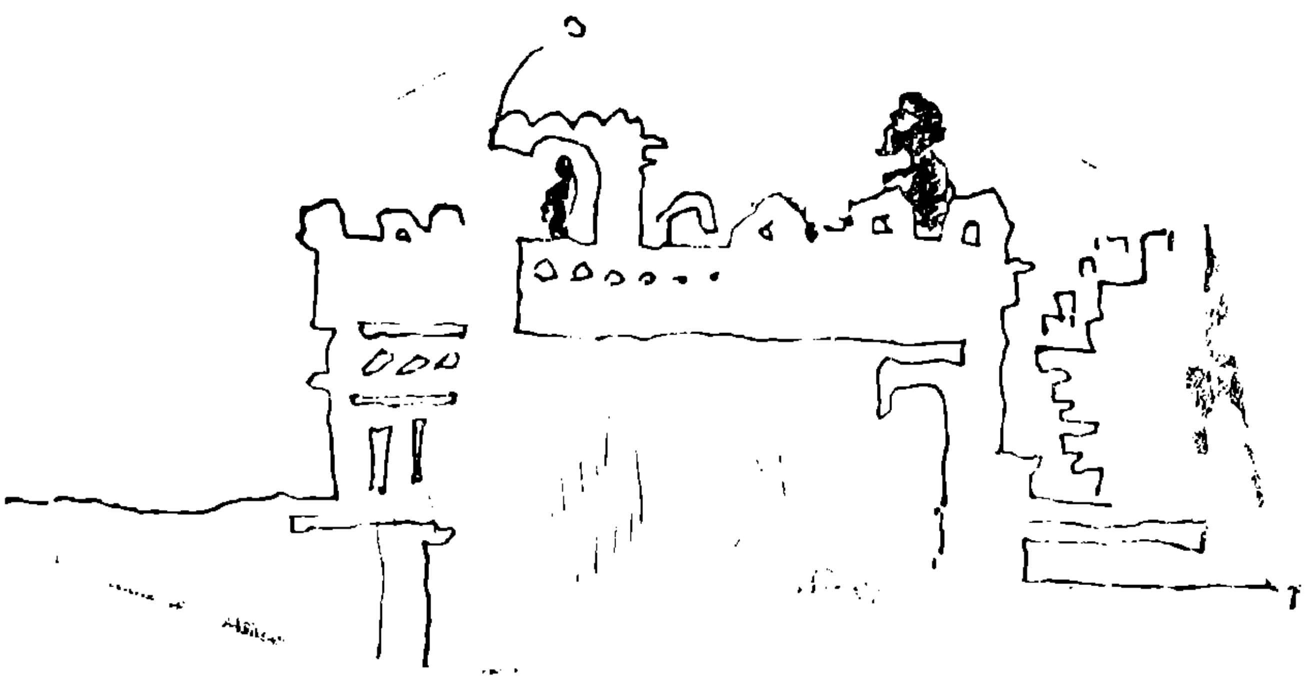
त्याग का प्रेम के साथ गहरा सम्बन्ध है, ऐसा सम्बन्ध कि यह निश्चय करना कठिन है कि कौन आगे है और कौन पीछे। प्रेम के बिना त्याग नहीं होता और त्याग के बिना प्रेम असम्भव है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

क्षुधित पाषाण

तथा अन्य कहानियां



हिन्द पॉकेट बुक्स

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

विश्वभारती के तत्वावधान में सम्पादित सम्पूर्ण, असंक्षिप्त, प्रामाणिक संस्करण

क्षुधित पाषाण : (कहानियां)

प्रथम संस्करण : 1991
प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-110032
मुद्रक : जैन कम्पोजिंग एजेंसी, शाहदरा, दिल्ली-110032

KSHUDHIT PASHAN (Short Stories)
RABINDRANATH TAGORE

ISBN 81-216-0187-8

श्रद्धांजलि

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 125वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर विश्वभारती विश्वविद्यालय ने उनकी रचनाओं के प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन पर विशेष ध्यान दिया, जिससे हमारे देश के लाखों हिन्दी पाठक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समृद्ध साहित्य को अपने और भी निकट पा सकें इस कार्य को करते हुए 5 वर्ष हो गए हैं।

यह कोई नया साहित्यिक प्रयास नहीं। दुर्भाग्य से पिछले वर्षों में रवीन्दनाथ की रचनाओं के विकृत तथा अप्रामाणिक अनुवादों के चलते भारतीय साहित्य तथा प्रकाशन जगत् दोनों को ही भारी क्षति उठानी पड़ी है। इसीलिए विश्वभारती ने, जिसके पास रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का सर्वाधिकार सुरक्षित है, पूरी तत्परता से उन भ्रष्ट प्रकाशकों के अनैतिक कार्यों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई किये जाने का प्रस्ताव रखा है। इस दिशा में सक्रिय कदम उठाते हुए रवीन्द्रनाथ के उपन्यासों, कविताओं, गीतों, कहानियों तथा अन्य साहित्यिक कृतियों को सुयोग्य अनुवादकों द्वारा हिन्दी में अनूदित कराने की योजना बनाई गई। साथ ही यह बात भी सोची गई कि इन रचनाओं के सजिल्द और पेपर बैक दोनों ही संस्करण पाठकों को सस्ते मूल्य पर सुलभ हों।

हमें इस बात की प्रसन्नता है कि हिन्द पॉकेट बुक्स व सरस्वती विहार ने विश्वभारती के सहयोग से इस दिशा में पहल की है और इस राष्ट्रीय मांग के अनुरूप, एक सराहनीय कार्य सम्पन्न किया है। प्रस्तुत ग्रंथ उसी का परिणाम है। मुझे पूरा विश्वास है कि पाठकों द्वारा इस योजना का भरपूर स्वागत होगा।

रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का अनुवाद समस्त भारतीय भाषाओं में और विशेषकर अधिकांश भारतीय जन समुदाय की मातृभाषा हिन्दी में एक महत्वपूर्ण कार्य है। न केवल साहित्यिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बल्कि राष्ट्रीय एकता और अखंडता को मजबूत करने के लिए, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द के संवर्धन हेतु भी यह अभीष्ट है।

विश्वभारती — **निमाई साधन बसु**
शान्तिनिकेतन (पश्चिमी बंगाल) — उपाचार्य

जीवन वृत्त

मानवीय सभ्यता के इतिहास में कुछ ऐसी प्रतिभाएं भी होती हैं, जिन्हें देशकाल की सीमाएं बांध नहीं पातीं। ऐसी प्रतिभाओं का परिचय चिरन्तन विश्व की व्यापकता में ही मिलता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ऐसी ही एक प्रतिभा थे। वे केवल भारत के ही नहीं, सारे संसार के कवि हैं, विश्व-मानव के कवि, कविनां कवितमः, लेकिन वे केवल कवि ही नहीं, कथाकार, उपन्यासकार, नाटककार, निबंधकार और चित्रकार भी हैं।

7 मई, सन् 1861 को कलकत्ता के विख्यात ठाकुर परिवार में रवीन्द्रनाथ का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर था। बचपन में उनकी पढ़ाई घर में शुरू हुई। बाद में कुछ समय के लिए लन्दन यूनिवर्सिटी कॉलेज में उन्होंने अध्ययन किया। बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से ही रवीन्द्रनाथ ने कविता लिखनी शुरू की। प्रारंभिक रचनाओं में 'बनफूल' तथा 'कवि-काहिनी' (1879) उल्लेखनीय हैं। उनके काव्य की मूलधारा की शुरुआत 'संध्या संगीत' (1882) से होती है। रवीन्द्रनाथ ने यह अवश्य कहा कि वे 'जन्म रोमांटिक' हैं, परन्तु उन्होंने यह कहना कभी नहीं भूला कि वह इस पृथ्वी को छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहते। वे बाकी सबके साथ ही जीना चाहते हैं :

मरिते चाहिना आमि सुन्दर भुवने
मानवेर माझे आमि बांचिबारे चाई।

'कड़ि ओ कोमल' (1886) 'प्रभात संगीत' (1883), 'छबि ओ गान' (1884), 'मानसी' (1890) में उनकी प्रारम्भिक कवि दृष्टि का विकास क्रम स्पष्ट है। 'सोनार तरी' (1894) काव्य ग्रंथ में विश्व-जीवन की आनन्द चेतना का पहला स्वर फूटता है। 'चित्रा' (1896) में यह परिणति प्राप्त करती है। इसी समय 'नैवेद्य' (1901) काव्य-संग्रह में भक्ति के लिए कवि की व्याकुलता प्रकट हुई। यह व्याकुलता 'गीतांजलि' (1910) में अनाविल भक्तिरस से अभिषिक्त हो उठती है। सन् 1913 में भारत की विदेशी सरकार ने उन्हें नाइट (सर) की

उपाधि प्रदान की, परन्तु सन् 1920 में पंजाब के जलियांवाला बाग के निर्मम हत्याकांड से मर्माहत होकर उन्होंने नाइट उपाधि वापिस कर दी। शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान को शान्तिनिकेतन के माध्यम से जाना जाता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के आधार पर विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। लक्ष्य था एक ऐसे विश्वविद्यालय का निर्माण, जहां विश्व एक नीड़ के समान बन सके।

इस बीच सन् 1916 में उनका 'बलाका' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ। भावैश्वर्य और शिल्पनैपुण्य से परिपुष्ट इस काव्य-संग्रह में विश्व के विवर्तन अथवा गति की रहस्यकथा प्रकट हुई है। इसके उपरांत प्रकाशित काव्य-ग्रंथों में 'पलातका' (1918), 'पूरबी' (1925), 'प्रवाहिनी' (1925), 'शिशु भोलानाथ' (1932), 'महुआ' (1929), 'वनवाणी' (1931), 'परिशेष' (1932), 'पुनश्च' (1942), 'वीथिका' (1934), 'पत्रपुट' (1936) आदि उल्लेखनीय हैं। 'पूरबी' (1925) में जीवन की अपराह्नवेला में जो शेष रागिनी बज उठी थी 'आरोग्य' (1941) तथा 'शेषलेखा' (1941) में मृत्यु के पदशब्द के साथ उसी की आवाज हमें सुनाई पड़ती है। मृत्युपथ यात्री की विचित्र अभिज्ञता से युक्त ये कविताएं संसार की श्रेष्ठ कविताओं में हैं। अवसन्न चेतना की गोधूलि-बेला में कालिन्दी के काले स्रोत में कवि अपनी देह को अपनी अनुभूतियों तथा विचित्र वेदना के साथ बहते देखता है। इसी विचित्र वेदना के भीतर ही उनकी प्रार्थना वाणी उच्चरित हुई है। मानो जीवन-मृत्यु के संधि-क्षण में खड़े कवि अपने जीवन की चरम उपलब्धि-सीमा के साथ असीम की एकात्मा को भूल नहीं पाए हैं :

हे पूषन्, तुमने अपनी किरणें समेट ली थीं। अब उसको फिर से फैलाओ, जिससे मैं तुम्हारे कल्याणतम रूप को देख सकूं और एक ब्रह्म की उपलब्धि कर सकूं।

पद्य की तरह गद्य की भी रचना रवीन्द्रनाथ ने बचपन से ही शुरू कर दी थी। उनके निबंध उनके शिल्पकार्य के ही उदाहरण हैं, जिनमें विचारों की गम्भीरता के साथ भावावेग की दीप्ति भी स्पष्ट है। उनका श्रेष्ठ गद्य ग्रन्थ 'जीवन-स्मृति' (1912-13) है। यह इतिहास नहीं स्मृति के पट पर कवि के द्वारा अंकित जीवन के कुछ चित्र हैं। सन् 1888 में रवीन्द्रनाथ ने आधुनिक बंगला साहित्य में छोटी कहानी की सृष्टि करके

एक नई महत्वपूर्ण विधा को प्रतिष्ठित किया। सन् 1884 में उनका पहला उपन्यास 'करुणा' प्रकाशित हुआ। रवीन्द्रनाथ के प्रसिद्ध उपन्यासों में 'चोखेर बाली' (1903), 'नौका डूबी' (1906), 'गोरा' (1909) आदि उल्लेखनीय हैं। नाटक के क्षेत्र में 'बाल्मीकि प्रतिभा' (1881), 'मायेर खेला' (1888) उनके प्रारम्भिक गीतिनाट्य हैं। स्वर के धागे में हृदयावेग को पिरो देना ही इन नाटकों का उद्देश्य रहा है। 'राजा ओ रानी' (1889), 'विसर्जन' (1890) तथा 'चित्रांगदा' (1892) में उनकी नाट्य प्रतिभा अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रकट हुई है। उनका सांकेतिक नाटक 'रक्तकरबी' (1926) उनकी श्रेष्ठ कृतियों में एक है। काव्य, स्वर, नाट्य तथा नृत्य के चतुरंग प्रवाह से युक्त उनके नृत्य नाटक 'नटीर पूजा' (1926), 'श्यामा' (1939) आदि उनकी बहुमुखी प्रतिभा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मानव जीवन में ऋतु-क्रम का प्रभाव तथा प्रतिक्रिया दिखाने के लिए उन्होंने 'शारदोत्सव' (1908), 'राजा' (1910), 'अचलायतन' (1912), 'फाल्गुनी' (1916) आदि नाटक लिखे।

जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने चित्र बनाना शुरू किया। इसमें युग का संशय, मोह, क्लांति, निराशा का स्वर आदिम भावावेग के साथ प्रकट हुआ, परन्तु यह उनके जीवन की अन्तिम बात नहीं थी। नये युग के नए जीवन-बोध को उन्होंने सहर्ष ग्रहण किया, किन्तु क्षणकाल के लिए भी उनका मन संशयान्वित नहीं हुआ। काव्यरचना के पहले दिन से अन्तिम दिन तक परिचित उपनिषद् का मंत्र ही उनका पाथेय बना रहा; इसीलिए तो आधुनिक युगबोध की बात करने वालों के सम्मुख उन्होंने निःसंकोच होकर कहा, 'मैंने जीर्ण जगत् में जन्म ग्रहण नहीं किया।' हालांकि नये का आह्वान करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया।

7 अगस्त, 1941 में उनकी मृत्यु हुई। मृत्यु से कुछ दिन पहले चिकित्सा के लिए उन्हें शान्तिनिकेतन से कलकत्ता स्थानान्तरित किया गया था। शान्तिनिकेतन से चलते हुए उनके नातिन ने उन्हें कहा था, 'दादाजी, आपको मालूम है, हमारे यहां नया पावर हाउस बन रहा है।' इसके उत्तर में उन्होंने कहा था, 'हां, पुराना आलोक चला जायेगा, नये का आगमन होगा।'

साहित्य अकादमी
नई दिल्ली-110001
दीपावली, 86

—इन्द्रनाथ चौधुरी

कथा-क्रम

क्षुधित पाषाण

मैं और मेरे सम्बन्धी पूजा की छुट्टी में देश की सैर पूरी करके कलकत्ता लौट रहे थे, तभी रेलगाड़ी में उन बाबू से मुलाकात हुई। उनका पहनावा-ओढ़ावा देखकर पहले तो उन्हें पश्चिमी इलाके का मुसलमान समझने की गलतफहमी हुई लेकिन उनकी बातचीत सुनकर और भी चक्कर में पड़ गया। वे दुनिया-भर के विषयों पर इस तरह बातें करने लगे जैसे विधाता उनके साथ राय-मशविरा करने के बाद ही सारा काम-काज करते हैं। दुनिया में अन्दर ही अन्दर तरह-तरह की जो अनेक अन-सुनी गम्भीर घटनाएं घटित हो रही थीं, रूसी कितने आगे बढ़ गये हैं, अंग्रेजों के क्या-क्या गुप्त इरादे हैं, देशी राजाओं में कैसी खिचड़ी पक रही है, इन सब बातों से बेखबर हम पूरी तरह निश्चिंत थे। हमारे नये मेह-मान ने कुछ हंसकर कहा, "There happen more things in heaven and earth, Horatio, than are reported in your newspaers. (होरेशियो, स्वर्ग और पृथ्वी पर तुम्हारे अखबारों में छपने वाली बातों की वनिस्बत कहीं ज्यादा घटनाएं घटती हैं।) हम पहली ही बार घर से बाहर निकले थे अतएव इस व्यक्ति का रंग-ढंग देखकर अवाक् रह गए। वह जरा-जरा-सी बात पर कभी विज्ञान का जिक्र करता, कभी वेद की व्याख्या करता और कभी अचानक फारसी के बैतों को दुहराने लगता।

विज्ञान, वेद और फारसी भाषा पर हमारी कोई पकड़ न होने के कारण उनके प्रति हमारी भक्ति धीरे-धीरे बढ़ने लगी। यही नहीं, मेरे थियोसोफिस्ट (सूफी) रिश्तेदार के मन में इसका पक्का विश्वास हो गया कि अपने इस हमसफर के साथ किसी दैवी करिश्मा का कुछ-न-कुछ रिश्ता है। कोई अजीबोगरीब मैगनेटिज्म या कोई दैवी शक्ति या सूक्ष्म शरीर, या ऐसी ही कोई एक चीज। वे इस गैर-मामूली आदमी की मामूली से मामूली बात भी भक्ति में डूबकर मुग्ध भाव से सुन रहे थे और चुपचाप नोट भी करते जा रहे थे। मुझे उनके रंग-ढंग से लगा कि वे करामाती आदमी भी मन-ही-मन यह समझ गए और खुश भी हुए थे।

जब गाड़ी जंक्शन पर रुकी तो हम दूसरी गाड़ी के इन्तजार में वेटिंग रूम में इकट्ठे हुए। तब रात के साढ़े दस बजे थे। सुनने में आया कि रास्ते में कुछ अड़चन आ जाने के कारण गाड़ी देर से आयेगी। इस बीच मैंने मेज के ऊपर बिस्तर फैलाकर सोने का निश्चय किया, तभी उन करामाती आदमी ने एक कहानी छेड़ दी। उस रात मुझे फिर नींद नहीं आई—

राज-काज के सिलसिले में दो-एक बातों में मतभेद होने के कारण मैं जूनागढ़ की नौकरी छोड़कर जब हैदराबाद के निजाम की सरकारी नौकरी में आया तब शुरू में मुझे उम्र में छोटा और कद-काठी से मजबूत देखकर बरीच में रुई का कर वसूल करने पर बहाल किया गया।

बरीच बड़ी सुन्दर जगह थी। वीरान पहाड़ के नीचे बड़े-बड़े वनों के भीतर से होकर शुस्ता नदी (संस्कृत स्वच्छतोया का अपभ्रंश) पथरीले रास्ते में चतुर नर्तकी के समान कदम-कदम पर लहराती, बल खाती, तेज गति से नाचती चली गई थी। ठीक उसी नदी के किनारे पत्थर के बने डेढ़ सौ सीढ़ियों के बहुत ऊंचे घाट पर सफेद पत्थर का एक अनोखा राजमहल पर्वत की तलहटी में खड़ा था। आस-पास कहीं कोई बस्ती न थी। बरीच की रुई की हाट एवं गांव यहां से दूर थे। करीब ढाई सौ साल पहले दूसरे शाह महमूद ने ऐशो-आराम के लिए इस सुनसान जगह में यह महल बनवाया था। उस समय हम्माम के फव्वारे से गुलाब की खुशबू से भरी फुहारें छूटती रहतीं और उस जल-फुहारों से नम एकान्त कमरे में संगमरमर जड़ी कोमल शिला पर बैठकर अपने कोमल नंगे पांवों को तालाब के

स्वच्छ पानी में फैलाये फारस देश की नवयौवनाएं स्नान से पहले बाल बिखेरे सितार गोद में लिए अंगूरी गजलें गाती रहतीं।

अब यह फव्वारा सूखा पड़ा था, वह गीत भी गायब हो गया था। सफेद पत्थर पर गोरे पांवों की कोमल ध्वनि नहीं रही थी—अब तो वह हम जैसे अकेलापन भोगते अपनी संगिनी से दूर कर वसूलने वाले कलेक्टर का बहुत विशाल और बेहद सुनसान बसेरा था। लेकिन दफ्तर के बूढ़े क्लर्क करीम खां ने मुझे इस बसेरे में रहने को बार-बार मना किया था। कहा था, "इच्छा हो तो दिन में रहें, पर यहां रात न बितायें।" मैंने उसकी बात हंसी में टाल दी। नौकरों ने कहा कि वे शाम तक काम करेंगे, लेकिन रात में यहां न रहेंगे। मैंने कहा, "ठीक है।" इस घर की ऐसी बदनामी थी कि रात के समय चोर भी यहां आने की हिम्मत नहीं करते थे।

पहले-पहल आने पर इस सुनसान पत्थर महल की वीरानगी मेरे मन को जैसे किसी भयंकर बोझ के समान दबाये रहती। मैं भरसक बाहर रह-कर लगातार काम-काज करने के बाद रात को थकी देह से घर लौटकर सो जाता।

लेकिन अभी एक हफ्ता भी नहीं गुजरा था कि इस मकान का एक अजीब नशा धीरे-धीरे हावी होकर मुझे घेरने लगा। अपनी उस हालत का बयान करना भी मुश्किल है और लोगों को उसका विश्वास दिलाना भी मुश्किल है। सारा घर जैसे किसी जीती-जागती चीज की तरह मुझे अपने अन्दर समेटकर धीरे-धीरे अपनी एक कशिश से लाचार और अशक्त करने लगा।

शायद इस घर में पांव रखते ही इस प्रक्रिया की शुरुआत हो गई थी; लेकिन मैंने जिस दिन सावधान होकर पहली बार इसकी शुरुआत का अनु-भव किया, उस दिन की बात मुझे अच्छी तरह याद है।

गर्मियों के शुरू में उस समय बाजार का रुख नरम था, हाथ में कोई काम नहीं था। सूरज डूबने के कुछ पहले मैं नदी-किनारे घाट की सबसे निचली सीढ़ी पर एक आराम कुर्सी लिए बैठा था। शुस्ता नदी का पानी घट गया था; दूसरे किनारे पर लम्बी दूरी तक फैली बालू का ढेर दोपहर बाद की धूप से रंगीन हो उठा था; इस पार घाट की सीढ़ियों के नीचे उजले

साफ पानी में बटियां झिलमिला रही थीं। उस दिन कहीं भी हवा नहीं थी। पास के पहाड़ पर वन-तुलसी, पोदीना और सौंप के जंगल से उड़ती तीखी गंध ने निश्चय आसमान तक पर असर डाल रखा था।

सूरज जब पहाड़ की चोटी के पीछे चला गया तभी मानो दिन के रंगमंच पर एक विशाल परदा गिर गया; पहाड़ों की ऊंचाई होने के कारण यहां सूरज डूबने के साथ उजाला और अंधेरे का मिलाप बहुत देर तक नहीं चल पाता। घोड़े पर बैठकर जरा घूम-फिर आऊं, यह सोचकर अब उठूं, तब उठूं कर रहा था कि सीढ़ी पर पैरों की आहट सुनाई पड़ी। पीछे फिरकर देखा, कोई नहीं था।

कानों का भ्रम समझकर लौटकर दुबारा बैठते ही एकाएक बहुत-से पैरों की आहट सुनाई पड़ी जैसे बहुत-से लोग मिलकर भाग-दौड़ करते हुए सीढ़ियां उतरते आ रहे हों। कुछ घबड़ाकर एक अद्‌भुत रोमांच से मेरा पूरा शरीर भर गया। वैसे तो मेरे सामने कोई आकार नहीं था फिर भी आंखों के सामने स्पष्ट घटित होने की तरह लगा कि गर्मियों की उस शाम खुशियों से चंचल औरतों का एक दल शुस्ता के पानी में नहाने के लिए उतरा है। वैसे तो उस शाम सुनसान पहाड़ की तलहटी में नदी के किनारे खाली महल में कहीं कोई शब्द नहीं था फिर भी मैंने जैसे साफ सुना कि झरने की सैकड़ों धाराओं के समान खेल में मग्न हंसती-किलकारी भरती हुई, मिलकर तेजी से दौड़ती हुई वे नहाने वालियां मेरे पास से जैसे निकल गई हों। मुझे जैसे उन्होंने देखा भी न हो। जिस तरह से वे मेरे सामने अदृश्य थीं, मैं भी जैसे उसी तरह उनके लिए अदृश्य था। नदी पहले की ही भांति स्थिर थी लेकिन मुझे स्पष्ट अहसास हुआ जैसे साफ पानी का उथला स्रोत बहुत सारे हाथों के आघात से हिलोरें ले उठा हो, हंस-हंसकर सखियां एक-दूसरे पर पानी के छींटे मार रही हों और तैरती हुई युवतियों के पांवों की चोट से पानी के छींटे मुट्‌ठी-भर मोतियों की तरह आसमान में बिखरे पड़ रहे हों।

मेरी छाती में एक प्रकार का कम्पन होने लगा; वह उत्तेजना भय की या आनन्द की या जिज्ञासा की थी, ठीक-ठीक नहीं कह सकता। बड़ी इच्छा होने लगी कि अच्छी तरह से देखूं, लेकिन देखने के लिए सामने कुछ

नहीं था; लगता था, अच्छी तरह कान लगाने से उनकी सारी बातचीत साफ सुनाई पड़ेगी लेकिन स्थिर मन से कान लगाकर सुनने पर केवल जंगल के झींगुरों की आवाज सुनाई देती। मुझे लगा, जैसे ढाई सौ वर्षों का काला परदा ठीक मेरे सामने झूल रहा हो, डरते-डरते एक सिरा उठाकर भीतर नजर डालूं, वहां एक विशाल सभा जुटी है, लेकिन गहरे अंधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

अचानक उमस को चीरती हुई हू-हू करके हवा चलने लगी। देखते-देखते शुस्ता के पानी की अस्थिर सतह किसी अप्सरा के बालों की तरह घुंघराली हो उठी, और शाम के अंधेरे में सारी वन-भूमि क्षण-भर में एक साथ मर-मर की आवाज में जैसे बुरे सपने से जाग उठी। चाहे सपना कहो या सच कहो, ढाई सौ वर्ष के बीते समय से एक रूप लेकर मेरे सामने जो एक अदृश्य मरीचिका पैदा हुई थी वह पल-भर में गायब हो गई। जो मायामयी मुझे फलांगती हुई देह न होते हुए भी तेज-तेज कदमों से शब्द-हीन जोर-जोर की हंसी बिखेरती दौड़कर शुस्ता के जल में जाकर कूद पड़ी थीं, अपने भीगे आंचलों से बूंदें टपकाती-टपकाती फिर मेरी बगल से होकर नहीं निकलीं। जिस तरह हवा गंध को उड़ाकर ले जाती है, उसी तरह वे वसन्त के एक उसांस में उड़कर चली गईं।

उस समय मुझे यही आशंका हुई कि अचानक सुनसान देखकर कहीं कविता देवी मेरे कंधे पर न आ बैठी हों; मैं बेचारा रुई का कर वसूल करके, मेहनत करके खाता हूं, सर्वनाशिनी शायद इस बार मेरे प्राण ही न लेने आई हों। सोचा, ठीक तरह भोजन करना होगा; खाली पेट होने पर ही सब तरह की कठिन बीमारियां आकर घेर लेती हैं। अपने रसोइये को बुलाकर मैंने खूब घी में पकाकर मसाला और खुशबू डालकर बाकायदा मुगलाई खाना तैयार करने का हुक्म दिया।

दूसरे दिन सबेरे यह सारा मामला बहुत हास्यास्पद मालूम पड़ा और प्रसन्न मन से साहबों की भांति सोला हैट पहनकर अपने हाथों से गाड़ी हांककर गड़गड़ाहट करता तहकीकात के अपने काम पर चला गया। उस दिन तिमाही रिपोर्ट लिखने का दिन होने के कारण देर से घर लौटने की बात थी। लेकिन संध्या होते-न-होते ही मैं घर की ओर खिंचने लगा।

कौन खींचने लगा, यह नहीं कह सकता; लेकिन लगा, अब और देरी करना ठीक न होगा। मुझे लगा, सब बैठे हुए हैं। रिपोर्ट अधूरी छोड़कर मैं सोला हैट लगाए शाम की झुटपुटे में पेड़ों के अंधेरे-भरे सुनसान रास्ते को अपनी गाड़ी की आवाज से गुंजाते हुए अंधेरे में डूबे पहाड़ी-तलहटी में स्थित उस महल में जा हाजिर हुआ।

सीढ़ियों के ऊपर वाला सामने का कमरा बहुत बड़ा था। बड़े-बड़े खम्भों की तीन पंक्तियों पर नक्काशीदार मेहराबों ने लम्बी-चौड़ी छत को थाम रखा था। यह विशाल कमरा अपनी अपार शून्यता को लिए हुए दिन-रात गूंजता रहता। उस दिन शाम के कुछ पहले का वक्त था, अभी दिये नहीं जलाये गए थे। दरवाजा ठेलकर मैंने ज्यों ही उस बड़े कमरे में प्रवेश किया त्यों ही मुझे लगा जैसे कमरे में कोई भारी हड़बड़ी मच गई हो। जैसे एकाएक सभा भंग करके चारों ओर के दरवाजों, खिड़कियों, कमरों, रास्तों, बरामदों से होकर न जाने कौन किस ओर भाग गया। कहीं भी कुछ न देख पाने के कारण मैं ठगा-सा खड़ा रह गया। देह एक तरह के आवेश से रोमांचित हो उठी। जैसे अनसंवरे बालों को सजाने के पुराने दुर्लभ सामान और इत्र की मीठी गंध मेरी नाक में प्रवेश करने लगी हो। उस अंधेरे सुनसान विशाल कमरे के पुराने पत्थर के खम्भों की कतारों के बीच खड़े हुए मुझे सुनाई पड़ा—झर-झर करता हुआ फव्वारे का पानी सफेद पत्थर पर आकर गिर रहा है। सितार में कौन-सा सुर बज रहा है समझ नहीं पड़ता, कहीं सोने के जेवरों की झंकार सुनाई पड़ रही है, कहीं नूपुरों की रुनझुन, कभी ताम्बे के वृहत् घण्टे पर पहर सूचक शब्द, बहुत दूर पर बजती नौबत का आलाप, वायु से डोलते झाड़ की कांच की लटकनों की टन-टन आवाज, बरामदे में पिंजरे में बन्द बुलबुल का गीत, बगीचे से पालतू सारस का बोल मेरे चारों ओर किसी प्रेत लोक की रागिनी रचने लगे।

मुझे एक ऐसे मोह ने आ घेरा कि लगा जैसे यह अनसुनी, अनजान, मनगढ़ंत गोरखधन्धा ही दुनिया में एकमात्र सच हो, बाकी सब झूठे फैलाव हों। मैं, जो मैं हूं, अर्थात् मैं जो श्रीयुक्त अमुक हूं, अमुक का बड़ा लड़का हूं, रुई का कर वसूल करके साढ़े चार सौ रुपये वेतन पाता हूं, मैं जो

सोला हैट और ऊंचा कुर्ता पहनकर टमटम हांककर दफ्तर जाता हूं, ये सारी बातें मुझे ऐसी अजीब बेसिर-पैर की और झूठ-सी लगीं कि मैं उस विशाल सुनसान अंधेरे कमरे के बीच खड़ा हा-हा करके हंस उठा।

उसी समय मेरे मुसलमान नौकर ने हाथ में किरासिन तेल का जलता हुआ लैम्प लिए घर में प्रवेश किया। मालूम नहीं उसने मुझे पागल समझा या नहीं, लेकिन उसी क्षण मुझे याद आया कि मैं स्वर्गीय अमुकचन्द्र का बड़ा लड़का, श्रीयुक्त अमुकनाथ ही हूं, यह भी सोचा कि संसार के भीतर या बाहर कहीं कोई अदृश्य फव्वारा हमेशा झरता है या नहीं और अदृश्य अंगुली के स्पर्श के किसी माया-सितार से कोई अनन्त रागिनी बजती है या नहीं, यह हमारे महाकवि और कविवर ही बता सकते हैं, लेकिन यह बात जरूर सच है कि मैं बरीच के बाजार में रुई का कर वसूल करके महीने में साढ़े चार सौ रुपया वेतन लेता हूं। तभी मैं फिर अपने थोड़ी देर पहले के अजीब-से मोह को याद करके किरासिन तेल के कैम्प टेबिल के पास अखबार लिए विनोद से हंसने लगा।

अखबार पढ़कर और मुगलाई खाना खाकर मैं कोने के एक छोटे-से कमरे में बत्ती बुझाकर बिस्तर पर जा लेटा। मेरे सामने वाले खुले जंगले में से अंधेरे जंगलों में ढके अरावली पहाड़ों के ऊपर एक दमदमाता सितारा करोड़ों योजन दूर आसमान से उस नाचीज कैम्प खाट के ऊपर श्रीयुक्त कर कलेक्टर को एकटक देख रहा था इस पर अचरज और गुद-गुदी महसूस करते-करते मैं कब सो गया, कह नहीं सकता। कितनी देर सोया यह भी नहीं मालूम। अचानक एक बार सिहरकर जाग पड़ा, कमरे में कोई आहट हुई हो, ऐसा भी नहीं; किसी आदमी ने प्रवेश किया हो, यह भी नहीं देख सका। अंधेरे पहाड़ के ऊपर से झिलमिलाता सितारा डूब चुका था। और अंधेरे की धुंधली चांदनी ने जबर्दस्ती लेकिन झिझक से मेरी खिड़की की राह प्रवेश कर लिया था।

कोई भी व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ा। तो भी मुझे साफ लगा, जैसे कोई मुझे धीरे-धीरे ठेल रहा हो। मेरे जाग उठते ही उसने बिना कुछ कहे और केवल अपनी अंगूठियों से सभी पांच उंगलियों के इशारे से मुझे साव-धानी से अपने पीछे-पीछे आने का आदेश किया।

मैं बिलकुल चुपके से उठा। वैसे उस सौ कमरों वाले सुनसान महल में, जिसमें सोने-जागने की आहट का एकसाथ अहसास होता था, मेरे सिवा और कोई भी प्राणी न था, फिर भी कदम-कदम पर डर लगता कि कहीं कोई जाग न पड़े। राजमहल के ज्यादातर कमरे बन्द रहते थे और उन कमरों में मैं कभी नहीं गया था।

उस रात मैं बिना आहट किये पैर रखता हुआ, सांस रोके निमंत्रण देने वाली उस अदृश्य नारी का पीछा करता किधर से होकर कहां जा रहा था, आज यह बता नहीं सकता। मैंने कितना संकरा अंधेरा रास्ता; कितना लम्बा बरामदा, कितना गम्भीर सुनसान विशाल सभागृह, कितनी घुटन-भरी, संकरी छिपी कोठरियां पार कीं, इसका कोई ठिकाना नहीं।

अपनी अदृश्य दूती को वैसे तो मैं आंखों से देख नहीं पा रहा था तब भी उसकी आकृति मेरे मन से अनदेखी नहीं थी—अरब की नारी जिसकी झूलती आस्तीनों से संगमरमर के-से कठोर, सुडौल हाथ दिख रहे थे, टोपी से लेकर मुंह तक एक झीने कपड़े का परदा पड़ा था, कमरबन्द में एक टेढ़ी छुरी बंधी थी।

मुझे लगा, आज अरबी उपन्यास की एक हजार एक रातों में से एक रात उपन्यास-लोक से उड़कर आ गई है। मैं जैसे अंधेरे-अंधेरे में आफत झेलते हुए नींद के झोंके में बगदाद के अंधेरे, संकरे रास्ते में किसी से मिलने के लिए निकल पड़ा होऊं।

आखिर में मेरी दूती एकाएक एक घने नीले परदे के सामने चौंककर खड़ी हो गई और जैसे अंगुली से नीचे की ओर संकेत किया। नीचे कुछ भी नहीं था, लेकिन डर से मेरा खून जम गया। मैंने अनुभव किया, उस परदे के सामने जमीन पर किमखाब की पोशाक पहने एक भयकर हब्शी खोजा गोद में नंगी तलवार लिये दोनों पैर फैलाकर बैठा ऊंघ रहा था। दूती ने धीमी चाल से उसके पैर लांघकर परदे का एक कोना पकड़कर उठाया।

भीतर से कमरे का थोड़ा-सा भाग दिखाई पड़ा, जिस पर फारसी गलीचा बिछा हुआ था। तख्त के ऊपर कौन बैठा था, यह नहीं दिखाई पड़ा, केवल जाफरानी रंग के ढीले पाजामे के नीचे जरी की जूतियां पहने

गुलाबी मखमल के आसन पर अलसाये-से रखे हुए दो सुन्दर पांव दिखाई दिये। मेज पर एक ओर एक नीले कांच के बर्तन में कुछ सेब, नासपाती, नारंगी और बहुत-से अंगूरों के गुच्छे सजे हुए थे और उसकी बगल में दो छोटे प्याले और सुनहरी शराब का एक कांच का नांद मेहमान के लिए इन्तजार कर रहा था। कमरे के भीतर से किसी अनोखे धूप के नशीले खुशबूदार धुएं ने आकर मुझे विभोर कर दिया।

मैं ज्यों ही कांपते दिल से उस खोजे के फैले हुए पैरों को लांघने चला त्योंही वह चौंक उठा, उसकी गोद से तलवार पत्थर के फर्श पर आवाज करती हुई गिर पड़ी।

अचानक एक जबर्दस्त चीख सुनकर चौंककर देखा, मैं अपनी उसी कैम्प खाट पर पसीने में तर बैठा हुआ था। भोर के उजाले में अंधेरे पाख का अधूरा चांद जगने से थके हुए मरीज की तरह पीला हो गया था और अपना वह पागल मेहरअली अपने रोज के कायदे से सुबह के सुनसान रास्ते में 'हट जाओ', 'हट जाओ' चिल्लाता जा रहा था।

उसी तरह अरबी उपन्यास की मेरी एक रात अचानक गुजर गई—लेकिन अभी तो एक हजार रातें बाकी थीं।

मेरे दिन और रात में एक भारी विरोधाभास पैदा हो गया। दिन के समय मैं थका-मांदा काम करने जाता और खाली लेकिन सपनों-भरी छलावों वाली रात को कोसता रहता, और फिर शाम के बाद मुझे दिन के समय का अपना यह मशक्कत में जुटा अस्तित्व बहुत तुच्छ, बेकार एवं हास्यास्पद लगने लगता।

शाम के बाद मैं बौखलाया-सा एक नशे के जाल में जकड़ जाता। मैं सैकड़ों साल पहले के किसी अलिखित इतिहास का कोई अन्य अनोखा व्यक्ति हो जाता, फिर उस समय मुझे विलायती ऊंचा कुर्ता और चुस्त पतलून नहीं फबती। उस समय मैं सिर पर लाल मखमल की एक फैज लगाकर ढीला पजामा, फूलदार कुर्ता और रेशम का लम्बा चोगा पहनकर, रंगीन रूमाल में इत्र लगाकर बड़ी कोशिश से अपने को सजाकर और सिगरेट छोड़कर गुलाब-जल से भरा पेचदार बड़ा हुक्का लेकर एक ऊंची गद्दी वाले बड़े दीवान पर बैठ जाता। जैसे रात में होने वाले किसी

अनोखे प्रिय सम्मेलन के लिए बड़े आग्रह से तैयार हो जाता।

इसके बाद ज्यों-ज्यों अंधेरा घना होता जाता, त्यों-त्यों न जाने कैसी अजीब-अजीब घटनाएं घटती रहतीं कि मैं उनका वर्णन नहीं कर सकता। ठीक जैसे किसी चमत्कार से भरी कहानी के कुछ फटे हुए अंश वसन्त की पहली वायु से इस विशाल महल के विचित्र कमरों में उड़ते रहते। थोड़ी दूर तक मिलते, फिर उसके बाद बाकी दिखाई नहीं देते थे। मैं भी उन मंडराते फटे अंशों का पीछा करता हुआ रात-भर कमरे-कमरे में चक्कर काटता रहता।

स्वप्न-खण्ड के इस भंवर में कभी हिना की सुगन्ध, कभी सितार के शब्द, कभी खुशबूदार पानी में नम हवा के झोंकों के बीच क्षण-क्षण में विद्युत्-शिखा के समान एक नायिका अचानक दीख जाती। उसका जाफरानी रंग का पाजामा और कोमल स्वच्छ लाल पांवों में पहनी घुण्डीदार उठी हुई जरी की जूतियों, छाती पर कसकर बंधी जरी की फूलोंदार चोली, सिर पर लाल टोपी और उससे झूलती सोने की झालर ने उसके दमकते ललाट एवं गालों को घेर लिया था।

उसने मुझे पागल बना दिया। मैं उसी से मिलने रोज रात को नींद के पाताल लोक के टेढ़े-मेढ़े रास्तों से भरी सपनों की मायापुरी की गली-गली, कमरे-कमरे में चक्कर काटता रहता था।

किसी-किसी दिन शाम के समय बड़े आईने के दोनों ओर दो बत्ती जलाकर बहुत जतन से शहजादे की तरह अपने को सजा रहा होता तभी अचानक देखता आईने में मेरी परछाईं के पास पल-भर के लिए उसी ईरानी तरुणी की छाया आ पड़ी है और पलक मारते ही गर्दन झुकाकर अपनी गहरी-काली बड़ी-बड़ी आंखों की पुतलियों से बहुत गहरा, तेज और दर्द-भरा कटाक्ष करके, सुन्दर रसीले होंठों पर एक मूक भाषा का अहसास-भर देकर हलके से नाचकर अपनी जवान देह को तेजी से ऊपर की ओर लहराकर पल-भर में ही दर्द, वासना, बौखलाहट, हंसी, कटाक्ष और जेवरों की चमक की चिंगारियों की वर्षा करके आईने में ही गायब हो गई है। वन-पर्वत की सारी खुशबुओं को लूटकर ढीठ हवा का एक झोंका आकर मेरी दोनों बत्तियों को बुझा देता। मैं साज-सज्जा छोड़कर कमरे

के पास वाली पलंग पर खुश होकर आंखें मूंदे लेटा रहता। मेरे चारों ओर उस हवा में अरावली के उस पहाड़ी कुंजों की सारी मिली-जुली खुशबुओं में जैसे बहुत-बहुत प्यार, बहुत-से चुम्बन, अनेक कोमल हाथों की छुअन, गहरे अंधेरे को भरकर तैरते रहते। कानों के पास जोर-जोर से चहचहाहट सुनाई देती। मेरे माथे पर खुशबू-भरी सांसों में आकर टकराती। और कोई मुलायम और खुशबूदार ओढ़नी बार-बार उड़-उड़कर मेरे गालों को छूती रहती। धीरे-धीरे जैसे कोई मोहित कर लेने वाली सांपिन अपने कसाव में मेरे सारे अंग कस लेती। मैं गहरी सांस लेकर बेसुध शरीर लिए गहरी नींद में गर्क हो जाता।

एक दिन दोपहर बाद मैंने घोड़े पर चढ़कर बाहर जाने की ठानी, न जाने कौन मुझे मना करने लगा। लेकिन उस दिन मैंने उस मनाही को नहीं माना। लकड़ी की एक खूंटी पर मेरा साहबों वाला टोप और ऊंचा कुर्ता लटक रहा था, उसको उतारकर मैं पहनने ही वाला था कि तभी शुस्ता नदी की रेत एवं अरावली पहाड़ की सूखी झाड़ी-पत्तियों का झण्डा फहराता एक जबरदस्त बवण्डर अचानक मेरे उस कुर्ते और टोपी को उड़ाकर चक्करघिन्नियों में ले चला और वही मीठी-सी हंसी की ध्वनि उस हवा के साथ चक्कर काटती हुई जिज्ञासा के एक-एक परदे पर चोट करती हुई ऊंचे-से-ऊंचे सप्तक पर चढ़ती सूरज डूबने वाली दिशा में पहुंचकर गायब हो गई।

उस दिन फिर घोड़े की सवारी नहीं हुई और उसके दूसरे दिन से उस ऊंचे कुर्ते और साहबी टोप का पहनना बिलकुल छोड़ दिया।

उसी दिन आधी रात को बिस्तर पर उठकर बैठने पर ऐसे सुनाई पड़ा, जैसे कोई अन्दर-ही-अन्दर फूट-फूटकर रो रही हो, मानो मेरी खाट के नीचे, फर्श के नीचे, इस विशाल महल की पथरीली दीवार के तले किसी नम अंधेरे-भरी कब्र में रो-रोकर कह रही हो, 'तुम मुझे मुक्त करके ले चलो। माया का कठोर बंधन, गहरी नींद, बेकार के सपनों के सारे दरवाजे चूर-चूर कर तुम मुझे घोड़े पर बिठाकर अपनी छाती से लगाकर, जंगल के बीच से, पहाड़ के ऊपर से, नदी पार करके अपने सूरज की किरणों से जगमगाते कमरे में ले चलो। मुझे मुक्त करो!'

मैं कौन हूं ? मैं कैसे छुड़ाऊंगा ? मैं इस चक्करदार बराबर बदलते सपनों की धारा में डूबी हुई किस कामना-सुन्दरी को किनारे खींच लाऊंगा ? हे दिव्य रूप वाली, तुम कब हुई थीं ? कहां थीं ? तुमने किस ठण्डे सोते के किनारे खजूर की झाड़ियों की छाया में किस बेघर मरु प्रदेश की निवासिनी की गोद में जन्म लिया था ? किस लुटेरे ने जंगली फूलों की कलियों के समान तुमको मां की गोद से वंचित कर बिजली की गति में चलने वाले घोड़े पर बिठाकर तपते रेत के ढेरों के पार किस राज-नगरी के गुलामों के बाजार में बेचने के लिए ले गया था ? वहां पर किस बादशाह के गुलाम ने तुम्हारे नये खिले शर्माते यौवन की सुन्दरता की सोच-परख करके सोने की मोहरें गिनकर सागर पार करके तुम्हें सोने की पालकी में बिठाकर अपने मालिक के रनिवास में तुम्हें सौगात के रूप में दे दिया था ? कैसा अजीब इतिहास था वहां का। वही सारंगी का संगीत, नूपुरों की छमछम और शीराज की सुनहरी शराब के बीच छुरी की झलक, जहर की लपटें, कटाक्ष की चोट ! कैसा अपार ऐश्वर्य, कैसी अन-गिनत कारागार ! दोनों ओर दो नौकरानियां कंगनों के हीरों में बिजली चमकाती हुई, चंवर डुलाती थीं। शहंशाह बादशाह तुम्हारे कोमल पांवों की हीरे-मोती जड़ी जूतियों पर लोटता था, बाहर दरवाजे पर यमदूत जैसे हब्शी देवदूत की तरह सजकर, हाथ में नंगी तलवार लिए खड़ा रहता। उसके बाद उस खून के छींटों, ईर्ष्या से उद्वेलित साजिश-भरे भयंकर रूप में जगमगाती दौलत के बहाव में उतराती हुई तुम रेगिस्तान की कली किस बेरहम मौत की गोद के समा गई या फिर किस बड़प्पन के तट पर जा पड़ीं ?

तभी वह पागल मेहरअली एकाएक चिल्ला उठा, "हट जाओ, हट जाओ ! सब झूठ है, सब झूठ है।" आंख खोलकर देखा, सवेरा हो गया था, चपरासी ने डाक की चिट्ठी-पत्री लाकर मेरे हाथ में दी और रसोइये ने आकर सलाम करके पूछा, "आज किस तरह का भोजन तैयार करना होगा।"

मैंने कहा, "नहीं, अब इस घर में और नहीं रहा जा सकता।"

उसी दिन अपना सामान उठाकर आफिस के मकान में जा टिका।

आफिस का बूढ़ा क्लर्क करीम खां मुझे देखकर कुछ मुस्कराया। मैं उसकी हंसी से खीझकर कोई जवाब दिए बिना काम करने लग गया।

जैसे-जैसे शाम होने लगी, मैं खोया-खोयापन-सा महसूस करने लगा। लगने लगा, बस अभी जल्दी कहीं जाना है। रुई के हिसाब की जांच का काम बहुत जरूरी लगने लगा, निजाम की निजामत तक मुझे कुछ बेमतलब-सी लगी। जो कुछ वर्तमान था, जो कुछ मेरे चारों ओर चल रहा था, फिर रहा था, कामों में मशगूल था, खो रहा था, सब कुछ मेरे लिए बहुत तुच्छ, बेमतलब और हीन लगने लगा।

मैं कलम पटककर बड़ी बही बंद करके तुरन्त टमटम पर चढ़कर भागा। देखा, टमटम ठीक सांझ की बेला में अपने-आप उस पत्थर के महल के दरवाजे के पास पहुंचकर रुक गई। जल्दी से सीढ़ियां चढ़कर कमरे में दाखिल हुआ।

आज सब कुछ खामोश था। अंधेरे कमरों ने जैसे नाराज होकर मुंह फुला लिया था। पछतावे से मेरा दिल बेचैन हो उठा, लेकिन कैसे बताऊं, किससे माफी मांगूं, खोज नहीं पाया। मैं उदास मन से अंधेरे में एक-एक कमरे में घूमने लगा। इच्छा होने लगी कि हाथ में कोई साज लेकर किसी का ध्यान करके गीत गाऊं। कहूं, 'हे अग्नि, जिस पतंगे ने तुमको छोड़कर भागने की कोशिश की थी, वह फिर मरने के लिए आया है। इस बार उसे माफ करो, उसके दोनों पंख जला दो, राख कर डालो।'

एकाएक ऊपर से सिर पर आंसू की बूंदें आ पड़ीं। उस दिन अरावली पर्वत की चोटी पर घनघोर बादल छाए हुए थे। अंधेरा भरा जंगल और शुस्ता का स्याह जल किसी भय के इन्तजार में निश्चल हो गए थे। एकाएक जल-थल, आसमान कांप उठे; और एकाएक बिजली ने दांत निकाले, आंधी बेसुध पागलपन के समान दूर के बीहड़ जंगल के भीतर से चीखती-चिल्लाती हुई झपट पड़ी। महल के बड़े-बड़े वीरान कमरों के सारे दरवाजे पछाड़ खाकर तीखी वेदना से हू-हू करके रोने लगे।

आज सारे नौकर आफिस के कमरे में थे, यहां बत्ती जलाने वाला कोई नहीं था। उस बादलों-भरी अमावस्या की रात में घर के भीतर निपट अंधेरे में साफ-साफ महसूस करने लगा—कोई सुन्दरी पलंग के नीचे

गलीचे के ऊपर मुंह के बल पड़ी, कसकर बंधी मुट्ठियों से अपने बिखरे बालों को खींच-खींचकर नीचे डाल रही है। उसके गोरे ललाट से खून फूटकर निकल रहा है, कभी वह जोर-शोर से ठठाकर हा-हा करके सूखी हंसी हंस पड़ती है, कभी फफक-फफककर फूट-फूटकर रोती दोनों हाथों से चोली फाड़कर नंगी छाती पीट रही है। खुली खिड़की से हवा गरजती हुई आ रही है, और मूसलाधार वर्षा ने आकर उसके सारे अंगों को सराबोर कर दिया है।

सारी रात न तूफान थमा, न रोना बन्द हुआ। मैं निस्सहाय दुःख महसूस करते हुए एक-एक कमरे में घूमता रहा। कहीं कोई नहीं था; किसको दिलासा देता, यह जबरदस्त अभिमान किसका था, यह बेचैनी-भरी शिकायतों का शोर कहां से उठ रहा था?

पागल चीख उठा, "हट जाओ, हट जाओ! सब झूठ है, सब झूठ है।"

देखा, सुबह हो गई थी और मेहरअली इस मुसीबतों के दिन भी बाकायदा महल के चारों ओर चक्कर लगाकर अपनी आदत के मुताबिक चीख रहा था। एकाएक मुझे लगा, शायद वह मेहरअली भी मेरे समान कभी इस महल में रहता रहा हो, अब पागल होकर बाहर आने पर भी इस पत्थर के दानव के मोह से खिंचकर रोज सुबह उसके चक्कर लगाने आता हो।

मैंने तभी उस वर्षा में ही दौड़ते हुए पागल के पास जाकर उससे पूछा, "मेहरअली, क्या झूठ है रे?"

वह मेरी बात का कोई जवाब दिए बिना मुझे धकेलकर अजगर के सामने चक्कर काटते हुए अजगर का भोजन बनी एक खिंचाव में कसी चिड़िया के समान चीखता हुआ महल के चारों ओर घूमने लगा। जी-जान से केवल अपने को सावधान करने के लिए बार-बार कह उठता, "हट जाओ, हट जाओ! सब झूठ है, सब झूठ है।"

उस बारिश और आंधी में पागल की भांति आफिस में जाकर करीम खां को बुलाकर मैंने कहा, "इसका क्या मतलब है, मुझे अच्छी तरह सब कुछ समझाकर बताओ।"

बूढ़े ने जो कहा उसका सारांश यह है, "किसी समय में उस महल में अनगिन अतृप्त वासनाएं, अनेक पागल सम्भोगों के शोले आपस में टकराते थे—उस सब मन की जलन से, उन सब अतृप्त कामनाओं के दुष्परिणाम के तौर पर इस महल का हर एक पत्थर का टुकड़ा जैसे प्यासा होकर जिन्दा आदमी को पाने पर उसको भूखी प्रेतनी की तरह खा डालना चाहता है। जिन्होंने तीन रातें उस महल में गुजारी हैं, उनमें से केवल मेहरअली पागल होकर बाहर निकला है, आज तक और कोई उसकी जकड़ से नहीं बच सका है।"

मैंने पूछा, "क्या मेरे बच निकलने का कोई रास्ता नहीं है?"

बूढ़े ने कहा, "केवल एक रास्ता है, जो बहुत मुश्किल है। वह तुम्हें बताता हूं। लेकिन इसके पहले उस गुलबाग की एक ईरानी जरखरीद दासी का पुराना इतिहास बताना जरूरी है। वैसी हैरतअंग्रेज और वैसी दिल दहलाने वाली घटना दुनिया में और कहीं नहीं घटी।"

तभी कुलियों ने आकर खबर दी, "गाड़ी आ रही है।" इतनी जल्दी? जल्दी-जल्दी बिस्तर-सामान बांधते-बांधते गाड़ी आ गई। उस गाड़ी के फर्स्ट क्लास में सोकर उठे एक अंग्रेज सज्जन खिड़की के बाहर मुंह निकालकर स्टेशन का नाम पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। हमारे हमसफर को देखते ही—'हैलो!' कहते हुए चीख उठे और अपने डिब्बे में बैठा लिया। हम सेकण्ड क्लास में चढ़े। बाबू कौन थे, पता नहीं लगा, कहानी भी पूरी नहीं सुनी जा सकी।

मैंने कहा, "वह आदमी हम लोगों को बेवकूफ समझ मजाक-मजाक में बुद्धू बना गया। कहानी शुरू से आखिर तक कल्पित थी।"

इस दलील के चलते अपने थियोसोफिस्ट सूफी रिश्तेदार के साथ मेरा सदा के लिए नाता टूट गया।

मास्टर साहब

भूमिका

तब रात के लगभग दो बजे थे। कलकत्ता के चुप पड़े शब्द-समुद्र में लहरें उठाती हुई एक बड़ी बग्घी भवानीपुर की ओर से विर्जी तलाब के मोड़ के नजदीक आकर रुकी। वहां किराये वाली एक गाड़ी देखकर गाड़ी पर सवार बाबू ने उसे बुलवाया। उनके पास हैट, कोट पहने विलायत से लौटा एक बंगाली युवक सामने के सीट पर दोनों पैर टिकाये कुछ मस्ती में गर्दन झुकाकर सो रहा था। यह युवक हाल ही में विलायत से आया था। इसी को सम्मानित करने के मौके पर दोस्तों के बीच एक दोस्त ने उसे कुछ दूर पहुंचाने के लिए अपनी गाड़ी में बैठा लिया था। उन्होंने उसको दो-तीन बार ठेलकर जगाते हुए कहा, "मजूमदार गाड़ी मिल गई, घर जाओ।"

मजूमदार चौंककर एक पक्की विलायती कसम खाकर किरायेवाली गाड़ी पर चढ़ गया। उसके गाड़ीवान को भली-भांति ठिकाना समझाकर ब्रूहाम[1] गाड़ी के सवार अपने रास्ते चले गये।

भाड़े वाली गाड़ी कुछ दूर सीधी जाकर पार्क स्ट्रीट के सामने मैदान के रास्ते की ओर मुड़ी। मजूमदार ने फिर एक बार अंग्रेजी कसम को बोलकर अपने मन में कहा, 'यह क्या 1 यह तो मेरा रास्ता नहीं है।'

1. एक तरह की घोड़ागाड़ी, जो गोल होती थी।

उसके बाद अर्धनिंदिया में सोचा, 'क्या पता, शायद यही सीधा रास्ता हो।'

मैदान में घुसते ही मजूमदार का शरीर कांप उठा। हठात् उसे लगा—कोई आदमी नहीं है, फिर भी उसकी बगल की जगह जैसे भरी-भरी लग रही थी जैसे उसकी सीट की खाली जगह का आसमान ठोस होकर उसे भींच रहा हो। मजूमदार ने सोचा, 'यह क्या मामला है ?'

'गाड़ी मेरे साथ यह कैसा व्यवहार कर रही है !'

"ए गाड़ीवान ! गाड़ीवान !"

गाड़ीवान ने कोई जवाब नहीं दिया। पीछे की खिड़की खोलकर मजूमदार ने साईस का हाथ पकड़ लिया; कहा, "तुम भीतर आकर बैठो।"

साईस ने भर्राई हुई आवाज में कहा, "नहीं साहब, भीतर नहीं जायेगा।"

सुनकर मजूमदार के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये; उन्होंने जोर से साईस का हाथ पकड़कर कहा, "जल्दी भीतर आओ।"

साईस ने जबर्दस्ती हाथ छुड़ाया और उतरकर बगटुट भागा। तब मजूमदार डरकर बगल की ओर झांकने लगा; कुछ भी नहीं दिखा तो भी ऐसा लगा जैसे बगल में कोई अचल चीज एकदम भिचकर बैठी हो। किसी तरह गले में बोल लाकर मजूमदार ने कहा, "गाड़ीवान, गाड़ी रोको।" ऐसा लगा जैसे गाड़ीवान ने खड़े होकर दोनों हाथों से लगाम खींचकर घोड़ों को रोकने की कोशिश की। घोड़े किसी तरह रुके ही नहीं। रुकने की बजाय दोनों घोड़े रेड रोड का रास्ता पकड़कर फिर दक्षिण की ओर मुड़ गए। मजूमदार ने घबराकर कहा, "अरे, कहां जाता है ?" कोई जवाब नहीं मिला। बगल की खाली जगह को रह-रहकर देखते-देखते मजूमदार के सारे बदन से पसीना छूटने लगा। किसी तरह जड़वत् होकर अपनी देह को जितना समेट सकता था, समेटा, लेकिन उसने जितनी जगह खाली की उतनी ही जगह भर उठी। मजूमदार मन-ही-मन सोचने लगा, 'किसी पुराने यूरोपीय ज्ञानी ने कहा है—Nature abhors vacuum. सो वही तो नहीं देख रहा हूं ? लेकिन यह क्या है ? यह क्या नेचर है ? यदि मुझसे कुछ न कहे तो मैं अभी उसके लिए सब जगह छोड़कर कूद पड़ूं।' कूदने की हिम्मत नहीं हुई। कहीं पीछे से कोई अनहोनी घटना

घट जाये तो ! 'पहरे वाले !' बोलकर पुकारने की कोशिश की लेकिन बड़ी मुश्किल से ऐसी एक अजीब-सी कमजोर आवाज निकली कि बहुत डरे हुए होने पर भी उसे हंसी आ गई। अंधेरे में मैदान के पेड़ भूतों की बेआवाज पार्लियामेण्ट की तरह आपस में एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े थे, और गैस के खम्भे जैसे सब कुछ जानते हों फिर भी कुछ नहीं बतायेंगे, इस तरह खड़े हुए टिमटिमाती रोशनी में इशारा करने लगे। मजूमदार ने सोचा कि चट से कूदकर सामने की सीट पर जा बैठे। जैसे ही उसने यह सोचा वैसे ही उसे लगा जैसे सामने की सीट से खाली-खाली एक नजर उसके मुंह की ओर ताक रही हो। आंखें नहीं, कुछ नहीं, फिर भी एक नजर। वह नजर किसकी थी यह उसे याद आ रही हो, फिर भी किसी भी तरह जैसे साफ-साफ याद नहीं कर पा रहा हो। मजूमदार ने दोनों आंखें जबर्दस्ती बन्द करने की कोशिश की लेकिन डर के मारे बन्द नहीं कर पाया—उस बेमतलब नजर की ओर मजूमदार ने दोनों आंखें इस प्रकार बलपूर्वक गड़ा रखी थीं कि पलक गिराने का भी मौका न मिला।

इधर गाड़ी बार-बार मैदान के रास्ते पर उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर की ओर लगातार चक्कर काटती हुई घूमने लगी। दोनों घोड़े जैसे पागल हो उठे हों। उनकी चाल लगातार बढ़ती रही। गाड़ी की थर-थर कांपती हुई खिड़कियों से खट-खट आवाज होने लगी।

इतने में गाड़ी जैसे किसी से टकराकर जोर से धक्का खा एकाएक रुक गई। मजूमदार ने चौंककर देखा, उसी के रास्ते पर गाड़ी खड़ी है और गाड़ीवान उसको हिलाकर पूछ रहा है, "साहब, कहां जाना होगा, बताइए।"

मजूमदार ने नाराज होकर पूछा, "इतनी देर मुझे मैदान में क्यों घुमाया ?"

गाड़ीवान ने हैरत से कहा, "कहां, मैदान में तो नहीं घुमाया।"

मजूमदार ने विश्वास न करते हुए कहा, "तब क्या यह केवल सपना था ?"

गाड़ीवान ने कुछ सोचते हुए डरकर कहा, "बाबू साहब, शायद यह केवल सपना न हो। आज तीन साल हुए मेरी इसी गाड़ी में एक घटना

घटी थी।"

तब मजूमदार का नशा और नींद का झोंका पूरी तरह दूर हो जाने के कारण वह गाड़ीवान की कहानी सुने बिना ही किराया देकर चला गया।

लेकिन रात में उसे अच्छी तरह नींद नहीं आई। बस, यही सोचता रहा, वह नजर थी किसकी ?

1

अधर मजूमदार के पिता मामूली शिप-सरकारी[1] के ओहदे से शुरू करके एक बड़े फर्म के कारिंदे के ओहदे तक पहुंच गए। अधर बाबू पिता के जोड़े हुए नगद रुपयों को ब्याज पर लगाते थे, उनको खुद मेहनत नहीं करनी पड़ती थी। पिता सिर पर सफेद पगड़ी बांधकर पालकी में बैठकर आफिस जाते थे, दूसरी ओर वे क्रिया-कर्म दान-ध्यान भी बहुत करते थे। मुसीबत के वक्त, सूखे-अकाल में सभी किस्मों के लोग आकर उन्हें घेरते, इसे वे गौरव की बात समझते थे।

अधर बाबू ने बड़ा घर बनवा लिया है, गाड़ी, घोड़ा लिया है, लेकिन लोगों के साथ उनका मेल-मिलाप नहीं है; केवल रुपया उधार दिलाने वाला दलाल आकर उनके भरे हुए हुक्के से तम्बाकू पी जाता है और अटार्नी के आफिस के बाबुओं के साथ स्टाम्प लगी दलील की शर्त के विषय में बातचीत होती रहती है। उनकी गृहस्थी में खर्चे से सम्बन्धित हिसाब की ऐसी खींच-तान है कि मोहल्ले के फुटबाल-क्लब के पीछा न छोड़ने वाले लड़के तक बहुत कोशिश करने पर भी उनके खजाने से कुछ वसूल नहीं कर पाते।

ऐसी हालत में उनकी गृहस्थी में एक मेहमान का आना हुआ। 'लड़का नहीं हुआ, नहीं हुआ' करते-करते बहुत दिन बाद उनके एक लड़का पैदा हुआ। लड़के का मुंह-कान मां की तरह था। बड़ी-बड़ी आंखें, नुकीली नाक, रात की रानी के फूल की पंखुड़ी जैसा रंग, जिसने देखा उसीने

1. जहाजों पर आने-जाने वाले सामान के प्रबन्ध विभाग का मामूली कर्मचारी।

कहा, "आहा ! लड़का क्या है, जैसे कार्तिकेय हो !" अघर बाबू का नौकर रतिकान्त बोला, "बड़े घर में जैसा लड़का होना चाहिए वैसा ही हुआ है ।"

लड़के का नाम रखा वेणुगोपाल ! इससे पहले अघर बाबू की घर वाली ननिबाला ने गृहस्थी के खर्च के बारे में पति के खिलाफ अपनी राय इस तरह जबर्दस्ती कभी जाहिर नहीं की थी। अपने शौक की दो-एक बातों या दुनियादारी के बहुत जरूरी कामों को लेकर बीच-बीच में बहस जरूर हुई है लेकिन आखिर पति की कंजूसी की अनदेखी करके चुपचाप हार मान ली है ।

इस बार ननिबाला को अधरलाल नहीं दबा सके । वेणुगोपाल को लेकर उनका हिसाब कदम-कदम आगे बढ़ने लगा । उसके पैरों की पैंजनी, हाथ का बाला, गले का हार, सिर की टोपी, उसकी देशी-विलायती तरह-तरह के रंग-बिरंगे पहनावे के बारे में ननिबाला ने जो कुछ मांग की सभी उन्होंने कभी चुपचाप आंसू बहाकर, कभी बातों की जोरदार झड़ी लगाकर हासिल कर ली । वेणुगोपाल के लिए जो जरूरी हो वह भी और जो जरूरी न हो वह भी चाहिए ही चाहिए—वहां खाली खजाने का बहाना या आने वाले दिनों के लिए खाली आश्वासन एक दिन भी नहीं टिक सका ।

2

वेणुगोपाल बड़ा होने लगा । वेणु के लिए खर्च करने की अधरलाल को आदत हो चली । उसके लिए ज्यादा मासिक वेतन देकर खूब पढ़ा-लिखा एक बूढ़ा मास्टर रख लिया । इस मास्टर ने मीठी बोली और शिष्टाचार द्वारा वेणु को वश में करने की बहुत कोशिश की लेकिन वे शायद आज तक विद्यार्थियों पर बराबर कड़ा अनुशासन रखकर मास्टरी की मर्यादा को कायम रखते आए थे, इसलिए उनकी भाषा की मिठास और व्यवहार की शिष्टता बस बेसुरी ही लगती रही । यह सूखी साधना लड़के को बहला नहीं सकी ।

ननिबाला ने अधरलाल से कहा, "यह तुम्हारा मास्टर कैसा है ? उसे देखते ही लड़का घबरा जाता है । उसे हटा दो ।"

बूढ़ा मास्टर छोड़ गया। पुराने वक्त में लड़कियां जिस तरह खुद अपने मन से स्वयंवरा होकर वर चुनती थीं उसी तरह ननिबाला का बेटा 'स्वयं मास्टर' बनकर खुद अपनी मर्जी से मास्टर चुनने लगा। वह जिसे स्वीकार नहीं करेगा उसकी सारी डिग्रियां और सर्टिफिकेट बेकार हैं।

इसी वक्त देह पर एक मैली चादर डाले और पैरों में कैनवास का फटा जूता पहने मास्टरी की उम्मीदवारी के लिए हरलाल आ पहुंचा। उसकी विधवा मां ने दूसरे के घर की रसोई बनाकर और धान कूटकर उसे शहर के पास के एक हाई स्कूल से किसी तरह एण्ट्रेंस पास करा दिया था। अब हरलाल कलकत्ता के कालेज में पढ़ने के लिए जी-जान से प्रतिज्ञा करके बाहर निकला था। अब खाने के अभाव में उसके मुंह का निचला भाग सूखकर भारत की 'कन्याकुमारी' के समान नुकीला हो गया था, केवल चौड़ा माथा हिमालय की भांति विशाल दिखते लोगों की नजर खींचता था। मरुभूमि की रेत से सूरज की किरणें जैसे टकराकर लौटती हैं, उसी तरह उसी दोनों आंखों से गरीबी की एक अजीब-सी झलक निकल रही थी।

दरबान ने पूछा, "तुम क्या चाहते हो? किसे चाहते हो?"

हरलाल ने डरते-डरते कहा, "घर के मालिक से मुलाकात करना चाहता हूं।"

दरबान ने कहा, "मुलाकात नहीं होगी।"

उसके उत्तर में हरलाल क्या कहे, यह सोच न पाने के कारण इधर-उधर कर रहा था, तभी सात साल का लड़का वेणुगोपाल बाग में खेल खत्म करके ड्योढ़ी में आ पहुंचा। हरलाल को दुविधा में देखकर दरबान ने फिर कहा, "बाबू, चले जाओ!"

वेणु को अचानक जिद सवार हो गई, उसने कहा, "नहीं जायेगा।" यह कहते हुए उसने हरलाल का हाथ पकड़कर उसे दो तल्ले के बरामदे में अपने पिता के पास ले जाकर हाजिर किया।

बाबू उस समय दिन की नींद पूरी करके अलसाये-से कुर्सी पर चुपचाप बैठे पैर हिला रहे थे और बूढ़ा रतिकांत काठ की एक चौकी पर आसन लगाये बैठा हुआ धीरे-धीरे हुक्का पी रहा था। उस दिन के ऐसे वक्त, ऐसी

हालत में संयोग से हरलाल मास्टरी पर बहाल हो गया।

रतिकांत ने प्रश्न किया, "आप कहां तक पढ़े हैं ?"

हरलाल ने कुछ मुंह नीचा करके कहा, "एण्ट्रेंस पास हूं।

रतिकान्त ने भौंहें तानकर कहा, "एण्ट्रेंस पास ! मैंने तो समझा था, कालेज में पढ़ चुके हैं। आपकी उम्र भी तो कुछ कम नहीं दिखती।"

हरलाल चुप रह गया। मदद पाने और मदद चाहने वालों को हर एक तरह दुखी करना ही रतिकान्त के आनन्द का खास विषय था।

रतिकान्त ने प्यार से वेणु को अपनी गोद के पास खींचने की कोशिश करते हुए कहा, "कितने एम० ए०, बी० ए० आए और गए, कोई पसन्द नहीं आया, भला आखिरकार क्या सोना बाबू एण्ट्रेंस पास मास्टर से पढ़ेंगे !"

वेणु ने रतिकान्त के खिचाव से अपने को जबर्दस्ती छुड़ाकर कहा, "हटो।"

रतिकान्त को वेणु किसी तरह सहन नहीं कर पाता था, लेकिन रति भी वेणु के इस दूर रहने के भाव को बच्चे की एक मीठी हरकत समझकर उसी में खुश होने की कोशिश करता, और उसको सोना बाबू, चांद बाबू, कह-कहकर चिढ़ाकर आग-बबूला कर देता।

हरलाल को उम्मीदवारी में कामयाब हो पाना मुश्किल हो गया; वह मन ही मन सोच रहा था कि बस अब किसी ठीक मौके से तख्त से उठकर बाहर चला जाये तो जान बचे। तभी अचानक अधरलाल के मन में आया कि इस छोकरे को बिलकुल मामूली वेतन देकर ही रखा जा सकता है। आखिर तय हुआ कि हरलाल घर में ही रहेगा, खायेगा और पांच रुपया महीना वेतन लेगा। घर में रखकर जितना अहसान जतायेंगे उसके बदले में ऊपर का काम करा लेने से बराबर कर लिया जायेगा।

3

इस बार मास्टर टिक गया। शुरू से ही हरलाल के साथ वेणु की ऐसी जमी जैसे वे दोनों भाई हों। कलकत्ता में हरलाल का अपना सम्बन्धी या मित्र कोई नहीं था। इस खूबसूरत नन्हे लड़के ने उसके पूरे मन पर

कब्जा जमा लिया । अभागे हरलाल को इससे पहले किसी से भी इस तरह प्यार करने का कोई मौका नहीं मिला था । किसी तरह उसकी हालत ठीक हो जाय, इसी उम्मीद में उसने बड़े दुख उठाकर किताबें इकट्ठी करके अकेले अपनी कोशिश से दिन-रात पढ़ाई की थी । मां को किसी न किसी का आसरा लेकर रहना पड़ा । इससे लड़के का बचपन केवल झिझक में ही बीता ।

रोक-टोक की हद लांघकर नटखटपन से अपने बचपन को आजादी से बिताने का सुख उसे कभी नहीं मिला । वह किसी के झुण्ड में नहीं था, वह अपनी फटी किताब और टूटी स्लेट के बीच बिलकुल अकेला था । दुनिया में जन्म लेकर जिस लड़के को बचपन में ही गुम-सुम भला आदमी बनना पड़े, बचपन से ही माता की तकलीफ और अपनी हालत समझकर जिसे सावधानी से चलना पड़े, कभी-कभी एकदम सोच-विचार को छोड़कर आजादी जिसकी किस्मत में न जुटे, खुश होकर शरारत दिखाना या दुख पाकर रोना, इन दोनों को ही जिसे दूसरे लोगों की असुविधा और नाराजगी के डर से उस छोटी उम्र में ही सोच-सोचकर दबाकर रखना पड़े, उसके समान दया का पात्र, फिर भी दया पाने में असफल दुनिया में और कौन है !

दुनिया के सब आदमियों से नीचे दबा पड़ा यह हरलाल खुद भी नहीं जानता था कि उसके मन के अन्दर प्यार का इतना रस मौके की तलाश में इस प्रकार जमा पड़ा था । वेणु के साथ खेलकर, उसे पढ़ाकर, बीमार हालत में उसकी सेवा करके हरलाल भली भांति समझ गया कि अपनी हालत सुधारने से भी बढ़कर आदमी के लिए एक और चीज है— वह चीज जब मिल जाती है तब उसे और कुछ अच्छा नहीं लगता ।

वेणु ने भी हरलाल को पाकर बहुत कुछ पा लिया । वजह यह थी कि घर में वह अकेला लड़का था, एक बहुत ही छोटी तीन वर्ष की एक बहन थी, वेणु उसे साथ देने के लायक ही नहीं समझता था । मुहल्ले में हम उम्र लड़कों की कमी नहीं थी, लेकिन अधरलाल द्वारा मन-ही-मन अपने घर को बहुत बड़ा घर समझ लेने से वेणु की किस्मत में मिलने-जुलने के योग्य लड़के नहीं थे । इस कारण हरलाल उसका एक ही संगी

हो गया। भले समय में वेणु की जो सारी शरारत दस जनों में बंटकर एक तरह से सहन करने लायक हो सकती थी वह सब अकेले हरलाल को सहन करनी पड़ती। यह सारी शरारतें रोज-रोज सहते-सहते हरलाल का प्यार और भी पक्का होने लगा। रतिकान्त कहने लगा, "हमारे सोना बाबू को मास्टर साहब चौपट करने पर तुले हैं।"

अधरलाल को भी बीच-बीच में लगने लगता जैसे मास्टर के साथ विद्यार्थी का रिश्ता शायद ठीक न हो। लेकिन हरलाल को वेणु से अलग कर सके ऐसी ताकत अब किसमें थी!

4

वेणु की उम्र अब ग्यारह की थी। हरलाल एफ० ए० पास करके वजीफा पाकर तृतीय वर्ष में पढ़ रहा था। इस बीच में कालेज में उसके दो-एक दोस्त न बने हों ऐसी बात नहीं थी लेकिन वह ग्यारह साल का लड़का अपने सब दोस्तों से बढ़कर था। कालेज से लौटकर वेणु को लेकर वह गोलदीघी और किसी-किसी दिन ईडन गार्डन घूमने जाता। उसको ग्रीक इतिहास के वीरों की कहानी सुनाता, थोड़ी-थोड़ी करके बंगला में स्काट और विक्टर ह्यूगो की कहानियां सुनाता—जोर से बोलकर अंग्रेजी कविता पढ़करके सुनाता और अनुवाद करके उसको पूरी तरह से समझाता, माने बता-बताकर शेक्सपियर का, 'जूलियस सीजर' पढ़-पढ़कर उसमें से उसे एण्टनी के भाषण को याद कराने की कोशिश करता। वह नन्हा-सा बच्चा हरलाल के मन को जगाने के लिए जैसे सोने की छड़ी[1] बन गया था। जब वह अकेला बैठकर पाठ याद करता था तब अंग्रेजी साहित्य में उसका इतना मन नहीं लगता था। अब इतिहास, विज्ञान, साहित्य जो कुछ भी वह पढ़ता उसमें थोड़ा-सा रस पाते ही वह उसे पहले वेणु को देने के लिए उतावला हो जाता और वेणु के मन में उस आनन्द की लहरें पैदा करने की कोशिश में ही उसकी अपनी समझाने की शक्ति और

---

1. एक लोककथा जिसमें राजकुमार ने सोने की छड़ी छुआकर सोती हुई राजकुमारी को जगा दिया था। सोने की छड़ी प्यार की सजग अवस्था की प्रतीक है।

आनन्द का हक जैसे बढ़कर दुगुना हो जाता।

वेणु स्कूल से आते ही जैसे-तैसे झटपट नाश्ता करके हरलाल के पास जाने के लिए एकदम बेचैन हो जाता, उसकी मां उसे किसी बहाने से, कोई भी लालच देकर घर में नहीं रोक पाती थी। ननिबाला को यह अच्छा भी नहीं लगता था। उसे लगता कि हरलाल अपनी नौकरी बनाये रखने के लिए लड़के को इस तरह काबू में रखने की कोशिश कर रहा है। उसने एक दिन हरलाल को बुलाकर परदे की ओट में से कहा, "तुम मास्टर हो, लड़के को बस एक घण्टा सबेरे और एक घण्टा शाम को पढ़ाओ—दिन-रात इसके साथ क्यों लगे रहते हो? आजकल तो वह मां-बाप किसीको भी नहीं मानता। वह कैसी शिक्षा पा रहा है! पहले जो लड़का मां का नाम सुनते ही नाच उठता था आज वह बुलाने पर भी पास नहीं आता। वेणु बड़े घर का लड़का है, उसके साथ तुम्हारा इतना मेलजोल किसलिए?"

उस दिन रतिकान्त अधर बाबू के साथ बातें कर रहा था कि उसकी जान-पहचान के ऐसे तीन-चार आदमी हैं, जिन्होंने बड़े आदमियों की लड़कों की मास्टरी करते हुए लड़कों का मन इस तरह काबू में कर लिया था कि लड़कों की जायदाद का हकदार बनने पर उन्होंने सर्वेसर्वा बनकर लड़कों को अपनी मनमर्जी चलाया था। हरलाल को ही इशारा करके ये सब बातें कही जा रही थीं, यह समझने में हरलाल को देर नहीं लगी। फिर भी उसने चुप रहकर सब सह लिया। लेकिन आज वेणु की मां की बात सुनकर उसकी छाती फट गई। वह समझ गया कि बड़े आदमियों के घरों में मास्टर की क्या इज्जत है। लड़के के दूध के लिए गोशाला में जैसे गाय रखी जाती है, उसी तरह उसको शिक्षा देने के लिए एक मास्टर रखा जाता है—विद्यार्थी के साथ प्यार-भरे अपनेपन का रिश्ता कायम करना इतनी बड़ी हिम्मत है कि नौकरों से लेकर मालकिन तक कोई भी उसे सहन नहीं कर सकता! और सभी उसे अपना मतलब साधने की तरकीब समझते हैं।

हरलाल ने कांपती आवाज में कहा, "मां, वेणु को मैं केवल पढ़ाऊंगा ही, उसके साथ मेरा और कोई लेन-देन न रहेगा।"

उस दिन शाम को वेणु के साथ खेलने के समय हरलाल कालेज से

ही नहीं लौटा। किस तरह सड़कों पर घूम-घूमकर उसने समय काटा, यह वही जानता था। शाम होने पर जब वह पढ़ाने आया तो वेणु मुंह फुलाये बैठा रहा। हरलाल अपनी गैर-हाजरी की कोई सफाई दिये बिना पढ़ा गया। उस दिन पढ़ाई अच्छी तरह नहीं हुई।

हरलाल रोज रात रहते उठकर अपने कमरे में बैठकर पढ़ता। वेणु सबेरे उठकर मुंह धोकर दौड़कर उसके पास आ जाता। बगीचे में पक्के हौज में मछलियां थीं, उनको मूड़ी के लड्डू खिलाना इनका एक काम था। बगीचे के एक कोने में बहुत-से पत्थर सजाकर छोटे-छोटे रास्ते और छोटा गेट और अहाता बनाकर वेणु ने बालखिल्य ऋषि के आश्रम के समान एक बहुत छोटा-सा बाग बना दिया था। उस बगीचे पर माली का कोई जोर नहीं था। सबेरे इस बगीचे की देख-भाल करना इनका दूसरा काम था। उसके बाद धूप चढ़ने पर लौटकर वेणु हरलाल के साथ पढ़ने बैठता। कल शाम को जिस कहानी का अंश सुने बिना रह गया, उसीको सुनने के लिए आज वेणु भरसक तड़के उठकर दौड़कर बाहर आया था। उसने सोचा था, सबेरे उठने में आज उसने मास्टर साहब को जीत लिया है। कमरे में आकर देखा, मास्टर साहब नहीं थे। दरबान से पूछने पर मालूम हुआ, मास्टर साहब बाहर निकल गए हैं।

उस दिन भी सबेरे पढ़ते वक्त वेणु अपने छोटे मन का दुख लिए मुंह लटकाये बैठा रहा। सबेरे-सबेरे हरलाल क्यों बाहर निकल गया था, यह भी नहीं पूछा। वेणु के मुंह की ओर देखे बिना हरलाल किताब के पन्नों पर आंखें गड़ाये पढ़ा गया। वेणु घर के भीतर अपनी मां के पास जब खाने बैठा तब उसकी मां ने पूछा, "कल शाम से तुझे क्या हो गया है, बता तो सही। मुंह हाण्डी-सा क्यों कर लिया है। अच्छी तरह खाता भी नहीं, बात क्या है ?"

वेणु ने कोई जवाब नहीं दिया। खाने के बाद मां ने उसे खींचकर उसकी देह पर हाथ फेरकर खूब प्यार दिखाते हुए जब बार-बार उससे पूछना शुरू किया, तो वह और नहीं रह सका, फफक-फफककर रो पड़ा। बोला, "मास्टर साहब !···"

मां ने कहा, "मास्टर साहब क्या ?"

वेणु नहीं बता सका कि मास्टर साहब ने क्या किया है। शिकायत क्या थी, उसे बोलकर जाहिर करना मुश्किल था।

ननिबाला ने कहा, "मालूम होता है मास्टर साहब ने तेरी मां के बारे में तुमसे कुछ शिकायत लगाई है।"

इस बात का कोई मतलब न समझ सकने के कारण वेणु बिना जवाब दिये चला गया।

5

इस बीच अधर बाबू के घर से कुछ कपड़े-लत्ते चोरी हो गए। पुलिस को खबर दी गई। पुलिस ने खाना-तलाशी में हरलाल के बक्स की तलाशी भी नहीं छोड़ी। रतिकान्त ने बहुत दबे-दबे से कहा, "जिस आदमी ने चोरी की है वह क्या माल बक्स में रखेगा?"

सामान का कोई पता नहीं चला। इस तरह का नुकसान अधरलाल के लिए असहनीय था। वे दुनिया के सभी लोगों पर नाराज हो गए। रतिकान्त ने कहा, "घर में बहुत-से आदमी हैं, किसको कसूरवार ठहराऊं, किस पर शक जाहिर करूं। जिसकी जब खुशी होती है आता-जाता है।"

अधरलाल ने मास्टर को बुलाकर कहा, "देखो हरलाल, अब किसी को भी घर में रखना हमारे लिए आसान नहीं होगा। आज से तुम अलग घर में रहकर वेणु को ठीक वक्त पर पढ़ा जाया करो, ऐसा ही करना ठीक होगा। न हो तो मैं तुम्हारे लिए दो रुपये बढ़ाने को राजी हूं।"

रतिकांत तम्बाकू पीते हुए बोला, "यह तो बड़ी अच्छी बात है। दोनों ही के लिए अच्छा है।"

हरलाल सिर झुकाए सुनता रहा। उस वक्त वह कुछ नहीं कह सका। घर आकर अधर बाबू को चिट्ठी लिख भेजी, कई कारणों से वेणु को पढ़ाना उसके लिए मुमकिन नहीं होगा, इसलिए आज ही वह विदा लेने के लिए तैयार है।

उस दिन वेणु ने स्कूल से लौटकर देखा, मास्टर साहब का कमरा खाली था। उनका वह टीन का टूटा-फूटा बक्सा भी नहीं था। जिस रस्सी के ऊपर उनकी चादर और अंगोछा लटका रहता, वह रस्सी तो थी,

लेकिन चादर और अंगोछा नहीं। मेज के ऊपर कापी, कागज और किताबें इधर-उधर बिखरी रहतीं, आज उनके बदले वहां एक बड़ी बोतल में चमकती हुई सुनहरी मछलियां ऊपर-नीचे आ-जा रही थीं। बोतल के ऊपर मास्टर साहब के हस्ताक्षरों में वेणु के नाम लिखा एक कागज चिपका था और एक नई अच्छी जिल्द की अंग्रेजी तस्वीरों वाली किताब थी, उसके अन्दर के पन्ने पर एक कोने में वेणु का नाम और उसके नीचे आज की तारीख, महीना और सन् लिखा था।

वेणु ने दौड़कर अपने पिता के नजदीक जाकर पूछा, "पिता जी, मास्टर साहब कहां गए ?"

पिता ने उसे अपने नजदीक खींचते हुए कहा, "वे काम छोड़कर चले गए हैं।"

वेणु पिता का हाथ छुड़ाकर पास वाले कमरे में बिस्तर पर औंधा लेटकर रोने लगा। बेचैन होकर अधर बाबू कुछ सोच न सके कि क्या करें।

दूसरे दिन साढ़े दस बजे मेस के एक कमरे में चौकी पर उदास बैठा हुआ हरलाल सोच रहा था कि कालेज जाए या नहीं। इसी बीच अचानक देखा कि पहले अधर बाबू का दरबान कमरे में दाखिल हुआ और उसके पीछे-पीछे वेणु कमरे में आते ही हरलाल के गले से लिपट गया। हरलाल का गला भर आया; बोलते ही उसकी आंखों से आंसू टपक पड़ेंगे, इस डर से वह कुछ भी नहीं कह सका।

वेणु ने कहा, "मास्टर साहब, हमारे घर चलो !"

वेणु अपने बूढ़े दरबान चन्द्रभान के पीछे पड़ गया था कि जैसे भी हो उसे मास्टर साहब को घर ले ही चलना होगा। मुहल्ले का जो कुली हरलाल का बक्स उठाकर लाया था उससे मालूम करके आज स्कूल जाने वाली गाड़ी में चन्द्रभान ने वेणु को हरलाल के मेस में लाकर हाजिर कर दिया।

हरलाल का वेणु के घर जाना एकदम कैसे मुश्किल था, यह वह कह भी नहीं सका और उसके घर भी नहीं जा सका। वेणु ने जो उसके गले

से लिपटकर उससे कहा था, 'हमारे घर चलो', इस छुअन और इस बात की याद ने कितने दिन, कितनी रातें उसके गले को दबाकर जैसे उसकी सांस को रोक रखा था। लेकिन धीरे-धीरे ऐसा दिन भी आया जब दोनों ओर का सब कुछ खत्म हो गया, दिल की नसों को जकड़कर पीड़ा का मृत चमगादड़ जैसे फिर लटकता नहीं रह सका।

6

बहुत कोशिश करने पर भी पढ़ने में हरलाल वैसा मन नहीं लगा सका। किसी भी तरह अपने को समेटकर वह पढ़ने नहीं बैठ पाता था। पढ़ने की थोड़ी-सी कोशिश करते ही झट किताब बन्द कर देता और बेकार ही तेजी से रास्ते का चक्कर लगा आता। कालेज में लेक्चरों को नोट करने में बीच-बीच में बहुत अड़चनें आ जातीं और जो कुछ घिच-पिच लिख पाता उसके साथ पुराने मिश्र, ईजिप्ट की चित्र-लिपि को छोड़कर और किसी वर्णमाला का मेल नहीं था।

हरलाल ने सोचा कि ये सब ठीक लक्षण नहीं हैं। इम्तिहान में चाहे वह पास हो भी जाए, लेकिन वजीफा पाने की कोई उम्मीद नहीं थी। उसके बिना कलकत्ता में उसका एक दिन भी काम नहीं चल सकता था फिर घर मां को भी कुछ पैसे भेजने चाहिए। बहुत सोच-विचार करके वह नौकरी की कोशिश में बाहर निकला। नौकरी मिलना मुश्किल था। लेकिन न मिलना उसके लिए और भी मुश्किल था; इस वजह से उम्मीद छोड़कर भी वह नाउम्मीद नहीं हो सका।

हरलाल की खुशकिस्मती से एक बड़े अंग्रेज व्यापारी के दफ्तर में उम्मीदवारी के लिए जाने पर हठात् बड़े साहब की नजर उस पर पड़ गई। साहब का मानना था कि वह चेहरा देखकर आदमी पहचान लेता था। हरलाल को बुलाकर उसके साथ दो-चार बातें करके उन्होंने मन-ही-मन सोचा, 'यह आदमी ठीक रहेगा।' पूछा, "काम जानते हो?" हरलाल ने कहा, "नहीं।" "जमानत दे सकोगे?" उसका जवाब भी "नहीं" मिला। "किसी बड़े आदमी से सर्टिफिकेट ला सकते हो?" लेकिन वह तो किसी बड़े आदमी को नहीं जानता था।

सुनकर साहब ने और भी खुश होकर कहा, "अच्छा ठीक है, पच्चीस रुपये वेतन पर काम शुरू करो, काम सीखने पर तरक्की होगी ।" बाद में साहब ने उसके पहनावे-ओढावे की ओर देखते हुए कहा, "पन्द्रह रुपया पेशगी देता हूं, दफ्तर में बरतने वाले कपड़े तैयार करा लेना ।"

कपड़े तैयार हुए, हरलाल ने दफ्तर जाना भी शुरू कर दिया । बड़े साहब उससे भूत के समान काम कराने लगे । और क्लर्कों के छुट्टी करके चले जाने पर भी हरलाल को छुट्टी नहीं मिलती थी । कभी-कभी साहब के घर जाकर भी उन्हें काम समझा आना पड़ता ।

ऐसे काम सीख लेने में हरलाल को देर नहीं लगी । उसके साथ के क्लर्कों ने उसे नीचा दिखाने की बहुत कोशिश की, उसके खिलाफ ऊपर के लोगों ने चुगली भी की, लेकिन इस गुमसुम, कमजोर, आम सख्शियत वाले हरलाल का कोई नुकसान नहीं कर सका ।

जब उसका वेतन चालीस रुपये हो गया, तब हरलाल घर से मां को ले आकर एक मामूली-सी गली में छोटे-से घर में रहने लगा । इतने दिनों बाद उसकी मां का कष्ट दूर हुआ । मां बोली, "बेटा, अब घर में बहू आनी चाहिए ।"

हरलाल ने मां के पैरों की धूल लेकर कहा, "मां, इसके लिए माफ करना पड़ेगा ।"

मां का एक और आग्रह था । उन्होंने कहा, "तू जो दिन-रात अपने विद्यार्थी वेणु गोपाल की बात करता है, उसको एक बार खाने पर बुला। उसे देखने की मेरी इच्छा है ।"

हरलाल ने कहा, "मां, इस घर में उसे कहां बैठाऊंगा ? जरा रुको, एक बड़ा घर तो लूं, उसके बाद उसे बुलाऊंगा ।"

7

वेतन बढ़ने के साथ छोटी गली से बड़ी गली के एक बड़े घर में हरलाल का रहना-सहना होता गया । फिर भी पता नहीं मन में क्या सोचकर अधरलाल के घर जाने या वेणु को अपने घर बुला लाने के लिए किसी तरह वह अपने को तैयार नहीं कर पाया ।

शायद उसकी झिझक कभी भी खत्म न होती। तभी अचानक खबर मिली कि वेणु की मां नहीं रही। सुनकर पल-भर भी देर न कर वह अधरलाल के घर पहुंचा।

उम्र में काफी फर्क वाले इन दो दोस्तों का बहुत दिन बाद फिर एक बार मिलन हुआ। वेणु की मां के क्रियाकर्म का समय बीत गया, तो भी इस घर में हरलाल का आना-जाना लगा रहा। लेकिन ठीक पहले जैसा अब कुछ नहीं रहा। वेणु अब बड़ा होकर अंगुलियों से अपनी नई मूंछों की लकीर को सम्भालने लगा था। चाल-चलन में बाबूपन की झलक आने लगी थी। अब उसकी पसन्द के दोस्त-मित्रों की भी कमी नहीं रही थी। ग्रामोफोन पर थियेटर की नाचने वालियों के हलके गाने बजाकर वह दोस्तों का मन-बहलाव किया करता। सोने के कमरे का वह पुराना और टूटा तख्त और धब्बों वाली मेज जाने कहां गायब हो गई। शीशे, तस्वीर और सामान से भरा कमरा जैसे छाती फुलाये हो। वेणु अब कालेज जाता लेकिन उसमें द्वितीय वर्ष की हद पार करने की कोई जल्दी नहीं दिखती थी। बाप ने तय कर लिया था कि दो-एक इम्तिहान पास करवाकर ब्याह की हाट में लड़के की बाजार-दर बढ़ा लेंगे। लेकिन लड़के की मां जानती थी और साफ-साफ रूप से कहती थीं, "मेरे वेणु को मामूली आदमियों के लड़कों की तरह बड़प्पन का सबूत देने के लिए इम्तिहान पास करने का हिसाब नहीं देना पड़ेगा। लोहे के सन्दूक में कम्पनी का कागज हिफाजत से रखा रहे।"

लड़का भी मां की यह बात मन-ही-मन अच्छी तरह समझ गया था।

जो हो, वेणु के लिए अब वह कोई जरूरी न रह गया था, यह हरलाल अच्छी तरह समझ गया और केवल रह-रहकर उस दिन की बात याद आती जब वेणु ने सबेरे एकाएक उस मेस में जाकर उसके गले से लिपटकर कहा था, "मास्टर साहब, हमारे घर चलो," न वह वेणु था, न वह घर, अब मास्टर साहब को कौन बुलायेगा?

हरलाल ने सोचा था, अब वह बीच-बीच में वेणु को अपने घर बुलाया करेगा। लेकिन उसको बुलाने की हिम्मत जवाब दे गई। एक बार सोचा, 'उसको आने के लिए कहूं,' उसके बाद फिर सोचा, 'कहने से फायदा क्या

—वेणु शायद बुलावे को कबूल कर आ ही जाए लेकिन रहने दो।'

हरलाल की मां ने नहीं माना। वे बार-बार कहतीं, "वे अपने हाथों से बनाकर उसे खिलाएंगी, हाय ! बेचारे की मां मर गई।"

अन्त में हरलाल एक दिन उसे खाने पर बुलाने गया। बोला, "अधर बाबू से इजाजत लेकर आता हूं।"

वेणु ने कहा, "इजाजत लेने की जरूरत नहीं होगी। आप क्या सोचते हैं, मैं अभी तक वही छोटा बच्चा हूं !"

हरलाल के घर वेणु खाना खाने आया। मां ने कार्तिकेय जैसे इस लड़के को अपने कोमल आंखों के आशीर्वाद से सराबोर करके बहुत मनावन करके खिलाया। उन्हें बार-बार लगता, 'हाय ! इस उमर के ऐसे लड़के को छोड़कर इसकी मां जब मरी होगी तब पता नहीं उसके प्राणों को कैसा लगा होगा !"

खाना खत्म करते ही वेणु ने कहा, "मास्टर साहब, मुझे आज कुछ जल्दी है। मेरे दो-एक दोस्त आने वाले हैं।"

यह कहकर जेब से सोने की घड़ी निकालकर एक बार वक्त देखा; उसके बाद जल्दी-जल्दी विदा लेकर बग्घी में जाकर बैठ गया। हरलाल अपने घर के दरवाजे पर खड़ा रहा। गाड़ी सारी गली को धमकाती हुई पल-भर में ही आंखों से ओझल हो गई।

मां बोली, "हरलाल, उसको बीच-बीच में बुला लाया कर ! इस उमर में उसकी मां मर गई है, यह सोचकर मेरा मन न जाने कैसा होने लगता है।"

हरलाल चुप रहा। इस बिन मां के लड़के को संतुष्टि देने की उसे कोई जरूरत नहीं लगी। लम्बी सांस लेकर मन-ही-मन बोला, 'बस यहीं तक, अब फिर कभी नहीं बुलाऊंगा। एक दिन पांच रुपये महीने की मास्टरी जरूर की थी—लेकिन मैं तो साधारण हरलाल मात्र हूं।'

8

एक दिन शाम के बाद दफ्तर से लौटकर हरलाल ने देखा, उसके नीचे के कमरे में अंधेरे में कोई बैठा है। वहां कोई है, इस बात पर ध्यान

दिये बगैर ही वह शायद ऊपर चला जाता, लेकिन दरवाजे से घुसते ही लगा, आबोहवा एसेंस की खुशबू से भरी है। घर में घुसते ही हरलाल ने सवाल किया, "कौन साहब हैं ?"

वेणु बोल पड़ा, "मास्टर साहब, मैं हूं।"

हरलाल ने कहा, "क्या बात है ? कब आये ?"

वेणु ने कहा, "बहुत देर हो गई। आप दफ्तर से इतनी देर में लौटते हैं यह तो मैं जानता ही न था।"

बहुत वक्त हो गया जब वह दावत खाकर गया था। उसके बाद वेणु एक बार भी इस घर में नहीं आया। न बात, न चीत, आज एकाएक इस तरह वह शाम के इस वक्त इस अंधेरे में बैठा इन्तजार कर रहा था। इससे हरलाल का मन चिन्तित हो उठा।

ऊपर के कमरे में जाकर बत्ती जलाकर दोनों बैठ गए। हरलाल ने पूछा, "सब अच्छा तो है ? कोई खास खबर ?"

वेणु ने कहा, "पड़ना-लिखना धीरे-धीरे मेरे लिए बहुत बोझिल होता जा रहा है। कहां तक मैं सालों उसी सेकिण्ड ईयर में पड़ा रहूं ? मुझसे उम्र में बहुत छोटे बहुत सारे लड़कों के साथ मुझको पढ़ना पड़ता है, मुझे बड़ी शर्म आती है। लेकिन पिता जी समझना ही नहीं चाहते।"

हरलाल ने पूछा, "तुम क्या चाहते हो ?"

वेणु ने कहा कि उसकी इच्छा है कि वह विलायत जाये, बैरिस्टर बन आये। उसके साथ ही पढ़ने वाले, यहां तक कि पढ़ने-लिखने में उससे बहुत कमजोर एक लड़के का विलायत जाना तय हो गया है।

हरलाल ने कहा, "अपने पिता को अपनी यह बात बताई है ?"

वेणु ने कहा था कि बताई है। पिता जी कहते हैं, बिना पास हुए विलायत जाने की बात वे सुनना नहीं चाहते। "लेकिन मेरा मन उचट गया है—यहां रहकर मैं किसी भी तरह पास नहीं हो सकूंगा।"

हरलाल चुपचाप बैठकर सोचने लगा।

वेणु ने कहा, "इस बात को लेकर आज पिता जी ने जो मन में आया मुझसे कह डाला। इसी से घर छोड़कर चला आया हूं। मां के रहते ऐसा कभी नहीं हो सकता था।" कहते-कहते वह दुख से रोने लगा।

हरलाल ने कहा, "चलो, हम तुम्हारे पिता जी के पास चलें, राय-मशविरा करके जो ठीक होगा, तय किया जाएगा।"

वेणु ने कहा, "मैं वहां नहीं जाऊंगा।"

पिता पर गुस्सा करके वेणु आकर हरलाल के घर रहेगा, यह बात हरलाल को बिलकुल जंची नहीं और 'मेरे घर नहीं रह सकोगे', यह कहना भी बहुत मुश्किल था।

हरलाल ने सोचा, 'और थोड़ी देर बाद मन कुछ ठण्डा होने पर बहला-कर इसको घर ले जाऊंगा।' पूछा, "तुम खाना खा आए हो?"

वेणु ने कहा, "नहीं, मुझे भूख नहीं है, आज मैं नहीं खाऊंगा।"

हरलाल ने कहा, "यह कैसे हो सकता है।"

झटपट जाकर मां से कहा, "मां, वेणु आया है, उसके लिए खाना बना दो।"

सुनते ही बहुत खुश होकर मां खाना तैयार करने गईं। हरलाल दफ्तर के कपड़े उतारकर हाथ-मुंह धोकर वेणु के पास आकर बैठ गया। थोड़ी खांसकर, कुछ इधर-उधर करके वेणु के कंधे के ऊपर हाथ रखकर बोली, "वेणु, बात ठीक नहीं हो रही है। पिता के साथ झगड़ा करके घर से चले आना तुम्हारे लिए जायज नहीं है।"

सुनकर तभी चारपाई से उठकर वेणु ने कहा, "आपके यहां यदि गुंजाइश न हो तो मैं सतीश के घर चला जाऊंगा।"

यह कहते हुए वह जाने को तैयार हुआ। उसका हाथ पकड़कर हरलाल ने कहा, "ठहरो, कुछ खाकर जाओ।"

वेणु गुस्सा होकर बोला, "नहीं, मैं नहीं खा सकूंगा।" कहते हुए हाथ छुड़ाकर वह कमरे से बाहर निकल गया।

इस बीच हरलाल के लिए जो नाश्ता तैयार था वही वेणु के लिए थाल में सजाकर मां उसके सामने आ खड़ी हुईं। बोलीं, "कहां जाते हो, बेटा!"

वेणु ने कहा, "मुझ काम है, मैं जा रहा हूं।"

मां बोलीं, "बेटा, ऐसा कैसे हो सकता है। बिना कुछ खाये नहीं जाने देंगे।"

वह कहती हुई बरामदे में ही खाने का इन्तजाम करके उसका हाथ पकड़कर खाने पर बैठा दिया।

वेणु गुस्से के मारे कुछ खा नहीं रहा था। खाने को लेकर कुछ टाल-मटोल कर रहा था कि इतने में दरवाजे के सामने आकर एक गाड़ी खड़ी हो गई। पहले एक दरबान और उसके पीछे स्वयं अधर बाबू चर्र-मर्र करते हुए सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आ पहुंचे। वेणु का मुंह पीला पड़ गया।

मां घर के भीतर चली गईं। अधर लड़के के सामने खड़े होकर गुस्से से कांपते हुए हरलाल की ओर देखकर बोले, "ओह, यह क्या बात है? रतिकान्त ने मुझसे तभी कहा था, लेकिन तुम्हारे पेट में इतनी तकलीफ थी, यह मैंने विश्वास नहीं किया था। तुमने सोचा है, वेणु को काबू में करके इसकी गर्दन मरोड़कर चबा जाऊंगा। लेकिन ऐसा नहीं होने दूंगा। लड़का चोरी करेगा तो तुम्हारे नाम पुलिस-केस चलाऊंगा, तुम्हें जेल भेजकर छोड़ूंगा।"

यह कहकर वेणु की ओर देखते हुए बोले, "चलो, उठो।" वेणु बिना कुछ कहे अपने पिता के पीछे-पीछे चल दिया।

उस दिन बस हरलाल को भी खाना नसीब नहीं हुआ।

9

इस बार हरलाल का तिजारती आफिस न जाने किसलिए गांव के इलाके से बहुत बड़ी मात्रा में दाल-चावल की खरीद करने में लगा था। इसके लिए हरलाल को हर हफ्ते शनिवार को सुबह की गाड़ी से सात-आठ हजार रुपया लेकर गांवों में जाना पड़ता। छोटे दूकानदारों को हाथों-हाथ दाम चुकाने के लिए गांव के इलाके के एक विशेष केन्द्र में उनका जो एक दफ्तर था, वहीं दस-दस, पांच-पांच रुपयों के नोट और नकद रुपये लेकर वह जाता, वहां रसीद और खाता देखकर गुजरे हफ्ते का बड़ा हिसाब मिलाकर, चालू हफ्ते का काम चलाने के लिए रुपये रख आता। दफ्तर के दो दरबान साथ जाते। हरलाल का कोई जामिनी नहीं है—यह बात दफ्तर में उठी थी, लेकिन बड़े साहब ने अपने ऊपर सारा जिम्मा लेकर कहा था, 'हरलाल को जामिनी की जरूरत नहीं है।'

माघ के महीने से यह काम चल रहा था, चैत तक चलेगा, ऐसी उम्मीद थी। इस मामले को लेकर हरलाल खास तौर से व्यस्त था। अक्सर वह देर रात गए दफ्तर से लौट पाता।

एक दिन इसी तरह लौटने पर सुना कि वेणु आया था। मां ने खिला-कर कह-सुनकर उसको बैठाया था। उस दिन उसके साथ बातचीत करके उनका मन उसकी ओर प्यार से और भी खिंच गया।

और भी दो-एक दिन ऐसा ही हुआ। मां बोलीं, "घर में मां नहीं है न इसलिए वहां उसका मन नहीं लगता। मैं वेणु को तेरे छोटे भाई के जैसा, छोटे लड़के के समान ही समझती हूं। वैसा ही प्यार पाकर केवल मुझे मां कहकर बुलाने के लिए यहां आता है।" कहते हुए आंचल के छोर से उन्होंने आंखें पोंछ लीं।

एक दिन हरलाल की वेणु से भेंट हुई। उस दिन वह इन्तजार में बैठा था। रात में काफी देर तक बातचीत हुई। वेणु ने कहा, "पिता जी आजकल ऐसे हो गए हैं कि मैं किसी भी हालत में घर में टिक नहीं सकता। खासकर मैं सुन रहा हूं कि वे ब्याह करने की तैयारी कर रहे हैं। रति बाबू रिश्ता लेकर आते हैं। बस, उनके साथ लगातार बात-विचार चल रहा है। पहले अगर मैं देर से लौटता था तो पिता जी बेचैन हो उठते थे, अब अगर मैं दो-चार दिन घर न लौटूं तो वे चैन-सा महसूस करते हैं। मेरे घर रहने से ब्याह की बात सोच-समझकर करनी पड़ती है इससे मेरे न रहने से वे चैन की सांस लेते हैं। अगर ब्याह होता है तो मैं घर में न रह सकूंगा। मुझे इस सबसे छूटने का कोई रास्ता बताइए—मैं आजाद होना चाहता हूं।"

प्यार और पीड़ा से हरलाल का दिल भर उठा। बुरे दिनों में सबको छोड़कर वेणु अपने उन मास्टर साहब के पास आया था, इस तरह दुख के साथ-साथ उसे खुशी भी हुई। लेकिन मास्टर साहब की हैसियत ही क्या थी।

वेणु ने कहा, "जैसे भी हो, विलायत जाकर बैरिस्टर होकर आने के बाद इस मुसीबत से छुटकारा मिल जाएगा।"

हरलाल बोला, "अधर बाबू क्या जाने देंगे?"

वेणु ने कहा, "मेरे चले जाने से उनकी जान बच जाएगी। लेकिन रुपये का उनको जैसा मोह है, उसे देखते हुए विलायत जाने का खर्च उनसे वसूल कर पाना आसान नहीं लगता। कुछ तरकीब करनी पड़ेगी।"

हरलाल ने वेणु की होशियारी पर हंसते हुए कहा, "कैसी तरकीब?"

वेणु ने कहा, "मैं हैण्डनोट लिखकर रुपया उधार लूंगा। उधार देने वाले के मेरे नाम नालिश करने पर पिता जी लाचार होकर उसे रुपया चुका देंगे। उस रुपये को लेकर विलायत चला जाऊंगा। वहां जाने के बाद उन्हें खर्च भेजना ही पड़ेगा।"

हरलाल ने कहा, "तुम्हें रुपया उधार देगा कौन?"

वेणु ने कहा, "क्या आप नहीं दे सकेंगे?"

हरलाल ने हैरत से कहा, "मैं!" उसके मुंह से और कोई बात नहीं निकली।

वेणु ने कहा, "क्यों, आपका दरबान तो तोड़ों में बहुत रुपया भर लाया है।"

हरलाल ने हंसकर कहा, "जैसे वह मेरा दरबान है, वैसे ही रुपया भी।"

यह कहते हुए उसने दफ्तर का रुपया किस काम के लिए था, यह वेणु को समझा दिया, "यह रुपया केवल एक रात के लिए ही गरीब के घर में टिकता है, सबेरा होते ही दसों दिशाओं की ओर चला जाता है।"

वेणु ने कहा, "आपके साहब मुझे उधार नहीं दे सकेंगे? और कुछ नहीं तो मैं ज्यादा सूद दे दूंगा।"

हरलाल ने कहा, "तुम्हारे पिता यदि सियोरिटी दे दें तो मेरे कहने पर शायद दे भी सकते हैं।"

वेणु ने कहा, "पिता जी अगर सिक्योरिटी ही देंगे तो रुपया क्यों नहीं देंगे?"

बहस यहीं खत्म हो गई। हरलाल मन-ही-मन सोचने लगा, 'मेरे पास यदि कुछ होता, तो घर-बार, जमीन-जायदाद सब बेच-बाचकर रुपया दे देता। लेकिन मुश्किल तो यही है कि घर-बार, जमीन-जायदाद कुछ भी नहीं है।'

10

एक दिन शुक्रवार की रात को हरलाल के घर के सामने एक बग्घी आकर रुकी। वेणु के बग्घी से उतरते ही हरलाल के दफ्तर का दरबान उसको लम्बा सलाम ठोककर घबराया हुआ ऊपर बाबू को खबर देने चला गया। तब हरलाल अपने सोने के कमरे में जमीन पर बैठा रुपया गिन रहा था। वेणु उसी कमरे में दाखिल हुआ। आज उसका बिलकुल ठाट-बाट था। शौकीनी धोती-चादर के बदले सुडौल देह में पारसी कोट और पतलून पहने सिर पर टोपी लगाकर आया था। उसके दोनों हाथों की अंगुलियों में मोटी-मोटी मणि-जड़ी अंगूठियां चमक रही थीं। गले में पड़ी हुई मोटी सोने की चेन में बंधी घड़ी सीने के पाकेट में पड़ी थी। कोट की आस्तीन के अन्दर से कुर्ते की आस्तीन में लगे हीरे के बटन चमक रहे थे।

रुपया गिनना बन्द करके चौंकते हुए हरलाल ने कहा, "क्या बात है ? इतनी रात गए इस वेश में कैसे ?"

वेणु ने कहा, "परसों पिता जी का ब्याह है। उन्होंने मुझसे यह बात छिपा रखी है, लेकिन मुझे पता लग गई है। पिता जी से कहा कि मैं कुछ दिन के लिए अपने बैरकपुर के बाग में जाऊंगा। यह सुनकर बहुत खुशी से वे राजी हो गए। अब बाग में जा रहा हूं। इच्छा हो रही है कि फिर न लौटूं। अगर हिम्मत होती तो गंगा में डूब मरता।"

कहते-कहते वेणु रो पड़ा। हरलाल की छाती में जैसे छुरी चुभ गई। एक अनजान औरत के आकर वेणु के मां के कमरे में मां की खाट पर कब्जा कर लेने पर, वेणु का प्यार और अनेक यादों से जुड़ा घर उसके लिए कैसा दुखदायी हो जाएगा, हरलाल ने पूरे दिल से इसको महसूस किया। मन-ही-मन सोचा, इस धरती पर गरीब होकर न जन्म लेने पर भी दुख और बेकदरी का कोई ओर-छोर नहीं है। वेणु को क्या कहकर तसल्ली दे, यह समझ न पाने से उसने वेणु का हाथ अपने हाथ में ले लिया। हाथ पकड़ते ही उसके मन में एक विचार आया। उसने सोचा, झंझट के एक ऐसे मौके पर वेणु अपने-आप को कैसे इतना सजा-वजा सका।

हरलाल को अपनी अंगूठी पर आंख गड़ाए हुए देखकर वेणु ने जैसे उसके मन की बात भांप ली। बोला, "ये अंगूठियां मेरी मां की हैं।"

सुनकर हरलाल बड़ी मुश्किल से आंसू रोक पाया। कुछ देर बाद बोला, "वेणु, खाना खा आए हो?"

वेणु ने कहा, "हां, आपका खाना-पीना नहीं हुआ?"

हरलाल ने कहा, "रुपया गिनकर आइरन सेफ में रखे बिना कमरे से बाहर नहीं निकल सकता।"

वेणु ने कहा, "आप खाना खा आइए। आपसे बहुत सारी बातें करनी हैं। मैं कमरे में रहूंगा। मां आपका खाना लिए बैठी हैं।"

हरलाल ने कुछ इधर-उधर करके कहा, "मैं चटपट खाकर आता हूं।"

हरलाल ने झटपट खाना खतम करके मां के साथ कमरे में दाखिल हुआ। वेणु ने उनके पैर छुए, उन्होंने वेणु की ठोड़ी का चुम्बन लिया। हरलाल से सारी खबर पाकर उनका दिल जैसे फटा जा रहा था। अपना सारा प्यार देकर भी वे वेणु की जिन्दगी की कमी को पूरा नहीं कर सकीं, उनको यही दुख था।

चारों ओर बिखरे रुपयों के बीच बैठे हुए तीनों में वेणु के बचपन की बातें होने लगीं। मास्टर साहब के साथ जुड़ी हुई उसके कितने ही दिनों की कितनी घटनाएं थीं। उन बातों के बीच-बीच में उस अथाह प्यार देने वाली मां की बात भी होने लगती।

इस तरह बहुत रात बीत गई। अचानक एक बार घड़ी देखकर वेणु ने कहा, "अब बस! देरी करने पर गाड़ी निकल जाएगी।"

हरलाल की मां ने कहा, "बेटा, आज रात यहीं रहो न! कल सुबह हरलाल के साथ एकसाथ ही निकल जाना।"

वेणु ने न मानने के तरीके से कहा, "नहीं मां, ऐसी जिद न करें। आज रात जैसे भी हो मुझे जाना ही होगा।"

वेणु ने हरलाल से कहा, "मास्टर साहब, ये अंगूठी, घड़ी वगैरह बाग में ले जाना महफूज नहीं है। आपके पास ही रखे जाता हूं और लौटकर ले जाऊंगा। अपने दरबान से कह दीजिए, मेरी गाड़ी से चमड़े का हैण्ड-

बैग ले आए । उसीमें ये चीजें रख दूं ।"

दफ्तर का दरबान गाड़ी से बैग ले आया । वेणु ने अपनी चेन, घड़ी, अंगूठी, बटन सब निकालकर बैग में भर दिए । सावधान हरलाल ने उस बैग को लेकर उसी समय लोहे की तिजोरी में रख दिया ।

वेणु ने हरलाल की मां के पैरों की धूल ली । उन्होंने भरे गले से दुआएं दीं, "मां जगदम्बा, मां बनकर तेरी रक्षा करें ।"

उसके बाद वेणु ने हरलाल के पांव छूकर प्रणाम किया । और किसी दिन उसने हरलाल को इस प्रकार प्रणाम नहीं किया था । हरलाल बिना कुछ कहे उसकी पीठ पर हाथ रखे हुए उसके साथ-साथ नीचे उतर आया । गाड़ी की लालटेन की बत्ती जला दी गई । दोनों घोड़े छटपटा उठे । कलकत्ता के गैस की बत्तियों की रोशनी से जगमगाती सड़कों पर दोपहर रात में वेणु को लिए हुए गाड़ी आंखों से ओझल हो गई ।

हरलाल अपने कमरे में आकर बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा । उसके बाद एक लम्बी सांस लेकर रुपया गिन-गिनकर अलग-अलग ढेर करके अलग-अलग थैलियों में भरने लगा । पहले ही नोटों की गिनती करके उन्हें थैली में बन्द करके उन्हें लोहे के सन्दूक में रख दिया था ।

11

लोहे के सन्दूक की चाबी तकिये के नीचे रखकर उस रुपये वाले कमरे में ही हरलाल बहुत रात गये सोने गया । अच्छी नींद आई । सपने में देखा, वेणु की मां परदे की ओट से ऊंची आवाज में उसे फटकार रही थीं । बात बिलकुल भी साफ सुनाई नहीं दे रही थी, केवल उस अनदेखे गले की आवाज के साथ-साथ वेणु की मां के मणि-पन्ना-हीरों के जेवरों से लाल, हरी, सफेद तेज कौंध काले परदे को भेदकर बाहर आकर बिखर रही थी । हरलाल जी-जान से वेणु को पुकारने की कोशिश कर रहा था, लेकिन उसके गले से किसी भी तरह से आवाज नहीं निकल रही थी । इसी बीच जोर की आवाज करता हुआ कुछ टूटकर परदे को फाड़कर गिरा— चौंककर आंखें मलकर हरलाल ने देखा, गहरा अंधेरा था । अचानक हवा का एक झोंका आया और एक आवाज के साथ जंगले को ठेलकर बत्ती

को बुझा दिया। हरलाल की सारी देह पसीने से भीग गई। झटपट उठकर दियासलाई से उसने बत्ती जलाई। घड़ी में देखा, चार बजे थे। अब सोने का समय नहीं था। रुपया लेकर आसपास के देहात में जाने के लिए तैयार होना होगा।

हरलाल के मुंह धोकर लौटते हुए मां ने अपने कमरे से कहा, "क्यों बेटा, उठ गया है?"

हरलाल सुबह-सुबह सबसे पहले मां का कल्याणदायी मुंह देखने के लिए कमरे में दाखिल हुआ। मां ने उसका प्रणाम कबूल कर मन-ही-मन उसे दुआएं देते हुए कहा, "बेटा, मैंने अभी सपने में देखा था, तू बहू लेने जा रहा है। भोर का सपना झूठा नहीं होता।"

हंसते हुए हरलाल कमरे में दाखिल हुआ। रुपये और नोटों की थैलियों को लोहे के सन्दूक से बाहर निकालकर पैक बाक्स में बन्द करने का जुगाड़ कर ही रहा था कि अचानक उसकी छाती धड़क उठी, नोटोंकी दो-तीन थैलियां खाली थीं। लगा जैसे सपना देख रहा हो। थैलियों को सन्दूक पर जोर से दे मारा, उससे खाली थैलियों के खालीपन का पता नहीं लगा तब बेकार ही एक आशा में थैलियों की गांठ को खोलकर अच्छी तरह से उन्हें झाड़ा, एक थैली में दो चिट्ठियां निकलीं। वेणु के हाथ की लिखावट थी। एक चिट्ठी उसके पिता के नाम थी, और एक हरलाल के नाम।

जल्दी से खोलकर पढ़ने लगा। आंखों से कुछ ठीक से दिखाई नहीं दे रहा था। लगा, जैसे रोशनी काफी नहीं है। बार-बार बत्ती को आगे बढ़ाने लगा। जो पढ़ता था उसे अच्छी तरह नहीं समझ रहा था, जैसे बंगला याद नहीं रह गई थी।

बात यह थी, वेणु तीन हजार रुपये के दस-दस रुपये वाले नोट लेकर विलायत के लिए चल पड़ा था। आज सुबह ही जहाज छूटने की बात थी। हरलाल जब खाने गया था उसी समय वेणु ने यह हरकत की थी। लिखा था, "पिता को चिट्ठी लिखी है, वे मेरा यह कर्ज चुका देंगे। उसके अलावा बैग खोलकर देखेंगे, उसमें मां के जो गहने हैं, उनकी क्या कीमत लगी है नहीं जानता, शायद तीन हजार रुपये से ज्यादा हो। मां अगर

जीवित रहतीं तो मुझे विलायत जाने के लिए पिता के रुपया न देने पर भी वे इन गहनों को देकर जरूर मेरे लिए खर्चे का जुगाड़ कर देतीं। मेरी मां के गहने पिता और किसी को दें, यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सका। इसलिए जैसे भी हो सका, मैंने उन्हें ले लिया है। पिता अगर रुपया देने में देरी करें तो आप खुद इन गहनों को बेचकर या गिरवी रखकर रुपया ले लेंगे। यह मेरी मां की चीज है, यह मेरी ही चीज है।" इसके अलावा और भी अनेक बातें थीं लेकिन वे कोई काम की बातें नहीं थीं।

कमरे में ताला लगा झट एक गाड़ी लेकर हरलाल गंगा के किनारे की ओर भागा। किस जहाज से वेणु रवाना हुआ है, उसका नाम भी वह नहीं जानता था। मटियाबुर्ज तक पहुंचने पर हरलाल को खबर मिली कि दो जहाज सवेरे रवाना हो गए हैं। दोनों ही इंग्लैण्ड जायेंगे। किस जहाज में वेणु है, यह उसके कयास के बाहर की बात थी और उस जहाज को पकड़ने का क्या तरीका हो सकता था, यह भी वह नहीं सोच सका।

मटियाबुर्ज से उसके घर की ओर जब गाड़ी लौटी तब सवेरे की धूप में कलकत्ता शहर जाग उठा था। हरलाल की आंखों को कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। उसका घबड़ाया मन एक अनदेखी भयंकर अड़चन को जैसे बराबर जी-जान से ठेल रहा था, लेकिन उसे कहीं एक तिल-भर भी हिला न पा रहा था। जिस घर में उनकी मां रहती थीं, अब तक घर में पैर रखते ही काम की सारी थकान और जूझने की पीड़ा पल-भर में ही उससे दूर हो जाती थी, उसी घर के सामने आकर गाड़ी रुकी—गाड़ीवान को किराया चुकाकर उसी घर में एक अनजान निराशा और डर लिए हुए वह दाखिल हुआ।

बेचैन-सी मां बरामदे में खड़ी थी। पूछा, "बेटा, कहां गए थे?"

हरलाल ने कहा, "मां, तुम्हारे लिए बहू लेने गया था।" यह कहकर वह सूखे गले से हंसते-हंसते वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा।

"भैया, यह क्या हो गया!" कहती हुई मां झपटकर पानी लाकर उसके मुंह पर छींटे मारने लगीं।

कुछ देर बाद हरलाल आंखें खोल, खाली-खाली नजर से चारों ओर देखकर, उठ बैठा। हरलाल ने कहा, "मां, तुम घबराना मत। मुझे थोड़ा

अकेले में रहने दो।" यह कहकर उसने झटपट कमरे में घुसकर अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया। मां दरवाजे के बाहर जमीन पर बैठ गईं। फागुन की धूप उनकी सारी देह पर पड़ रही थी। वे बन्द दरवाजे के ऊपर सिर रखकर, रह-रहकर बार-बार पुकारने लगीं, "हरलाल, बेटा हरलाल।"

हरलाल ने कहा, "मां, अभी थोड़ी ही देर में बाहर निकलूंगा। अभी तुम जाओ।"

मां धूप में वहीं बैठकर जप करने लगीं।

दफ्तर के दरबान ने आकर दरवाजे पर धक्का देकर कहा, "बाबू इसी वक्त न निकले तो फिर गाड़ी नहीं मिल सकेगी।"

हरलाल ने अन्दर से कहा, "आज सात बजे की गाड़ी से जाना है।"

दरबान ने कहा, "फिर कब चलेंगे ?"

हरलाल ने कहा, "यह मैं तुम्हें बाद में बताऊंगा।"

दरबान सिर हिलाकर हाथ मटकाते हुए नीचे चला गया।

हरलाल सोचने लगा, 'यह बात कहूं किससे ? यह चोरी है। वेणु को कौन जेल भेजेगा ?'

एकाएक उसे गहने की बात याद आई। यह बात वह एकदम भूल गया था। लगा जैसे किनारा मिल गया हो। बैग खोलकर देखा, उसमें केवल अंगूठी, घड़ी, बटन, हार ही नहीं, ब्रेसलेट, चिक, मंग टीका, मोतियों का हार वगैरह और भी बहुत-से कीमती जेवर थे। उनकी कीमत तीन हजार रुपये से कहीं ज्यादा थी। लेकिन यह भी तो चोरी थी। यह भी तो वेणु का नहीं था। यह बैग जितनी देर उसके घर में रहेगा उतनी देर उसके लिए मुसीबत थी।

तब और देर न करके अधरलाल के पास जाने के लिए वह चिट्ठी और बैग लेकर कमरे से बाहर निकला।

मां ने पूछा, "बेटा, कहां जा रहे हो ?"

हरलाल न कहा, "अधर बाबू के घर।"

मां की छाती से एकाएक अनजाने डर का एक बड़ा बोझ उतर गया। उन्होंने सोचा; हरलाल ने जब से वेणु के पिता के ब्याह की बात

सुनी है, तब से बेचारे के मन में चैन नहीं है। अहा ! वेणु को कितना चाहता है !

मां ने पूछा, "तो आज फिर तुम्हारा देहात जाना नहीं होगा ?"

हरलाल ने कहा, "नहीं !" और वह तुरन्त बाहर निकल गया।

अधरलाल के घर पहुंचने से पहले ही दूर से सुनाई दिया कि शहनाई पर अल्हैया बिलावल रागिनी का मधुर स्वर मे आलाप छेड़ा गया है, लेकिन हरलाल ने अन्दर घुसते ही देखा, ब्याह वाले इस घर में चहल-पहल के साथ जैसे एक तरह की छटपटाहट की छाया सभी जगह मौजूद है। दरबानों का सख्त पहरा था, घर से नौकर-चाकर कोई बाहर नहीं निकल सकता था। सभी के चेहरों पर डर और चिन्ता के भाव थे। हरलाल को खबर मिली, कल रात घर से बहुत कीमती जेवरों की चोरी हो गई। दो-तीन नौकरों पर खास तौर से शक होने की वजह से उन्हें पुलिस को सौंप देने की कोशिश हो रही थी।

दूसरी मंजिल के बरामदे में जाकर हरलाल ने देखा, अधर बाबू आग बबूला हुए बैठे थे और रतिकांत तम्बाकू पी रहा था। हरलाल ने कहा, "आपसे अकेले में मुझे कुछ बात करनी है।"

अधर बाबू ने चिढ़कर कहा, "तुम्हारे साथ अकेले में बात करने की इस वक्त मेरे पास गुंजाइश नहीं है—जो बात हो यहीं कह दो !"

उन्होंने सोचा, हरलाल शायद इस वक्त उनके पास कोई मदद या उधार लेने आया है।

रतिकांत ने कहा, "मेरे सामने बाबू को बताने में अगर कोई अड़चन है तो मैं उठ जाता हूं।"

अधर ने खीझकर कहा, "ऊंह, बैठो न।"

हरलाल ने कहा, "कल रात को वेणु मेरे घर यह बैग रख गया है।"

अधर—बैग में क्या है ?

हरलाल ने बैग खोलकर अधर बाबू के हाथ में दे दिया।

अधर—मास्टर-छात्र ने मिलकर अच्छा धंधा खोला है। यह जानते हो कि यह चोरी का माल बेचने से पकड़े जाओगे इसीसे ले आये हो···

सोचते होंगे, ईमानदारी के लिए बख्शीश पाओगे ?

तब हरलाल ने अधर के नाम का खत उनके हाथ में दे दिया। पढ़कर वे आग-बबूला हो उठे। बोले, "मैं पुलिस को खबर दूंगा। मेरा लड़का अभी बालिग नहीं हुआ है। तुमने मेरी नाजानकारी में उसको विलायत भेजा है। शायद पांच सौ रुपया उधार देकर तीन हजार रुपया लिखवा लिया है। कर्ज का भुगतान मैं नहीं करूंगा।"

हरलाल ने कहा, "मैंने उधार नहीं दिया।"

अधर बोले, "तो उसे रुपया मिला कहां से। तुम्हारा बक्स तोड़कर चोरी की है ?"

हरलाल ने इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया। रतिकांत चबा-चबाकर बोला, "इनसे पूछिए तो, तीन हजार तो क्या, इन्होंने क्या कभी पांच सौ रुपया भी आंखों से देखा है ?"

जो हो, गहनों की चोरी का सुराग मिल जाने के बाद वेणु के विलायत भागने को लेकर घर में एक कोहराम मच गया। हरलाल सारे कसूर का जिम्मा अपने सिर पर लेकर घर से बाहर आया।

जब वह बाहर सड़क पर आया तो उसका मन जैसे जड़ हो गया था। अब उसमें डरने और सोचने की भी ताकत नहीं रह गई थी। इस काण्ड का नतीजा क्या हो सकता था, मन में वह यह बात नहीं लाना चाहता था।

गली में घुसते ही देखा, उसके घर के सामने एक गाड़ी खड़ी थी। चौंक पड़ा। अचानक एक उम्मीद जगी, वेणु लौट आया है। जरूर ही यह वेणू है। बिना कुछ कहे उसकी मुसीबत पूरी तरह एक सिरे से हल हो जायेगी इस बात पर उसे किसी तरह विश्वास नहीं हो पा रहा था।

जल्दी-जल्दी गाड़ी के पास आकर देखा, गाड़ी के अन्दर उसके दफ्तर के एक साहब बैठे थे। साहब हरलाल को देखते ही गाड़ी से उतरकर हाथ पकड़े हुए घर में दाखिल हुए। पूछा, "आज देहात क्यों नहीं गए ?"

दफ्तर के दरबान ने शक में आकर बड़े साहब को खबर कर दी थी। उन्होंने इनको भेजा था।

हरलाल बोला, "तीन हजार रुपये के नोट नहीं मिल रहे हैं।"

साहब ने पूछा, "कहां गए ?"

हरलाल, 'मैं कुछ नहीं जानता,' यह जवाब भी नहीं दे सका, चुप रह गया।

साहब ने कहा, "रुपया कहां है, चलो देखूं।"

हरलाल उसको ऊपर के कमरे में ले आया। साहब ने सब रुपये गिन-कर चारों ओर ढूंढ़-खोजकर देखा। घर के सभी कमरों की छान-बीन की। सब कुछ देखकर मां से और नहीं रहा गया, उन्होंने साहब के सामने ही बाहर निकलकर बेचैन होकर पूछा, "अरे हरलाल, क्या हुआ रे !"

हरलाल ने कहा, "मां, रुपया चोरी चला गया है।"

मां ने कहा, "चोरी कैसे जा सकता है, हरलाल ! यह सत्यानाश किसने किया ?"

हरलाल ने कहा, "मां, चुप रहो !"

तलाशी लेने के बाद साहब ने पूछा, "इस कमरे में रात को कौन था ?"

हरलाल ने कहा, "दरवाजा बन्द करके मैं अकेला सोया था, और कोई बात नहीं थी।"

साहब ने रुपया गाड़ी में रखकर हरलाल से कहा, "अच्छा, बड़े साहब के पास चलो।"

हरलाल और साहब को साथ जाते देख मां ने उनका रास्ता रोककर कहा, "साहब, मेरे लड़के को कहां ले जाओगे ? भूखे रहकर इसको पाला है, मेरा लड़का कभी भी दूसरे के रुपयों को हाथ नहीं लगायेगा।"

बंगला में कही बात बिलकुल भी न समझते हुए साहब ने कहा, "अच्छा-अच्छा।"

हरलाल ने कहा, "मां, तुम क्यों घबरा रही हो ? बड़े साहब से मिलकर मैं अभी आता हूं।"

परेशान होकर मां ने कहा, "तूने सवेरे से कुछ नहीं खाया है।"

इस बात का कुछ भी जवाब दिये बिना हरलाल गाड़ी में बैठकर चला गया। मां जमीन पर लोटी पड़ी रहीं।

बड़े साहब ने हरलाल से कहा, "सच कहो, बात क्या है ?"

हरलाल ने कहा, "मैंने रुपया नहीं लिया है।"

बड़ा साहब—इस बात का मैं पूरा विश्वास करता हूं, लेकिन तुम यह जरूर जानते हो रुपया किसने लिया।"

कोई उत्तर न देकर हरलाल मुंह नीचा किये बैठा रहा।

साहब—तुम्हारे जानते यह रुपया किसी ने लिया है ?

हरलाल ने कहा, "मेरे जिन्दा रहते मेरे जानते कोई यह रुपया नहीं ले सकता था।"

बड़े साहब ने कहा, "देखो हरलाल, मैंने तुम पर विश्वास करके बिना कोई जमानत लिए हुए यह जिम्मेदारी का काम दिया था। दफ्तर के सब लोग इसके खिलाफ थे। तीन हजार रुपया कुछ ज्यादा नहीं है। लेकिन तुम मेरी बड़ी बदनामी कराओगे। आज पूरे दिन का वक्त तुमको देता हूं, जैसे भी हो, रुपया इकट्ठा करके लाओ। तब इसे लेकर कोई चर्चा नहीं करूंगा, तुम जैसे काम कर रहे हो वैसे ही करते रहोगे।"

यह कहकर साहब उठ गये। उस समय ग्यारह बज चुके थे। हरलाल जब सिर नीचा किये बाहर चला गया तब दफ्तर के बाबू लोग बहुत खुश होकर हरलाल के गिर जाने की चर्चा करने लगे।

हरलाल को एक दिन का वक्त मिला। निराशा की आखिरी तह के कीचड़ को उछालकर सतह के ऊपर लाने के लिए मियाद के रूप में और भी जैसे एक लम्बा दिन बढ़ गया।

चारा क्या है ? चारा क्या है ? चारा क्या है ? यही सोचते-सोचते उस धूप में हरलाल चक्कर काटने लगा। कोई चारा है या नहीं, आखिर में यह चिन्ता खत्म हो गई, लेकिन बिना वजह सड़क पर चक्कर काटना बन्द नहीं हुआ। जो कलकत्ता हजारों लोगों के टिकने की जगह है वही पल-भर में हरलाल के लिए एक बड़ी चूहेदानी जैसा हो उठा। उसमें किसी ओर से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था। सारा समाज इस नाचीज हरलाल को चारों ओर से रोके हुए खड़ा था। कोई उसे जानता भी नहीं, और उसके लिए किसी के मन में कोई बुरी भावना भी नहीं, लेकिन हर एक आदमी उसका दुश्मन था। फिर भी सड़क के लोग उसकी देह से सटकर उसके पास से चले जा रहे थे; दफ्तर के बाबू लोग बाहर

आकर दोने में नाश्ता कर रहे थे, उसकी ओर कोई नहीं देखता था; मैदान के किनारे थके हुए मुसाफिर सिर के नीचे हाथ रखकर, पैर के ऊपर पैर रखकर पेड़ के नीचे पड़े थे; घोड़ागाड़ी में बैठकर हिन्दुस्तानी (गैर बंगाली) लड़कियां कालीघाट की ओर जा रही थीं। एक चपरासी ने एक खत हरलाल के सामने करके कहा, "बाबू, पता पढ़ दो।" जैसे उसमें तथा दूसरे आने-जाने वालों में कोई फर्क न हो। ठिकाना पढ़कर उसे समझा दिया। धीरे-धीरे दफ्तर बन्द होने का समय आ गया। दफ्तर की इमारत से बाहर निकलकर अलग-अलग सड़कों पर से होकर गाड़ियां घरों की ओर दौड़ पड़ीं। दफ्तर के बाबू लोग ट्राम में बैठकर थियेटर के विज्ञापनों को पढ़ते हुए घर को लौट चले। आज हरलाल का दफ्तर नहीं था; दफ्तर की छुट्टी भी नहीं थी, घर लौटने के लिए ट्राम पकड़ने की कोई जल्दी नहीं थी। शहर के सारे कारोबार, घर-द्वार, गाड़ी-घोड़ा, आना-जाना हरलाल के लिए कभी बहुत डरावने सच के समान दांत निकालकर खड़े हो जाते, कभी एकदम निरे सपने की तरह छाया बन जाते। रोटी नहीं, आराम नहीं, घर नहीं, किस तरह हरलाल का दिन बीत गया, यह वह भी नहीं जान सका। रास्तों पर गैस की रोशनी फैल गई जैसे एक चौकस अंधेरा चारों ओर से अपने हजारों खूंखार आंखें खोले हुए शिकार के पीछे पड़े दानव के जैसा चुप बैठा हो। रात कितनी बीत गई थी, इस बात की हरलाल ने फिक्र भी नहीं की। उसके सिर की धमनियां धप-धप कर रही थीं; माथा जैसे फटा जा रहा हो, सारी देह में आग जल रही हो; पैर अब नहीं उठते। सारे दिन एक-एक करके दुख की चोट और उदासी की जड़ता से केवल मां की बात मन में आती रही थी—कलकत्ता की अनगिन जनसंख्या में से केवल वही एक नाम सूखे गले को पार कर मुंह में आता रहा—मां, मां, मां! और कोई पुकारने के लिए नहीं था। सोचा, रात जब गहरी हो जायेगी, कोई भी आदमी जब इस नाचीज बेकसूर हरलाल को बेआबरू करने के लिए जागता नहीं रहेगा, तब वह चुपके से अपनी मां की गोद में जाकर सो जायेगा—उसके बाद जैसे फिर नींद न टूटे। इस डर से, कि कहीं उसकी मां के सामने पुलिस के आदमी या और कोई उसकी बेइज्जती करने आवे, वह घर नहीं जा पा रहा था।

देह का कोई बोझ जब वह नहीं सम्भाल पा रहा था तब किराये की गाड़ी को देखकर हरलाल ने उसे बुलाया। गाड़ीवान ने पूछा, "कहां जाना है?"

हरलाल ने कहा, "कहीं नहीं। इसी मैदान के रास्ते पर कुछ देर हवा खाता हुआ घूमूंगा।"

घबड़ाते हुए गाड़ीवान को चले जाने को तैयार देखकर हरलाल ने उसके हाथ में एक रुपया पेशगी किराया दे दिया। तब वह गाड़ी हरलाल को लेकर मैदान के रास्ते पर चक्कर काटती हुई घूमने लगी।

तब थके हरलाल ने अपने गर्म सिर को खुले जगले के ऊपर रखकर आंखें मूंद लीं। धीरे-धीरे उसका सारा दर्द जैसे दूर होने लगा। देह ठण्डी हो गई। मन में एक गहरी, सघन, आनन्दपूर्ण शांति गहराने लगी। जैसे किसी महान् मुक्ति ने उसको चारों ओर से जकड़ लिया। उसने सारे दिन सोचा था, कि उसके लिए कहीं कोई रास्ता नहीं, सहारा नहीं, छूटने का कोई चारा नहीं, उसके असम्मान का कोई ओर-छोर नही, दुख की हद नहीं, वह बात जैसे एक क्षण में झूठ हो गई हो। अब लगा, वह तो केवल एक डर था, वह तो सत्य नहीं था। जिसने उसकी जिन्दगी को लोहे के पंजे में दबाकर पीस डाला था, हरलाल ने उसे बिलकुल भी कबूल नहीं किया—मुक्ति ने आसमान के पूरे फैलाव को भर दिया है, शांति की कहीं कोई हद नहीं। इस नाचीज हरलाल को दर्द में, बेइज्जती में, जालसाजी में जकड़ रख सके ऐसी ताकत दुनिया के किसी राजा-महाराजा में भी नहीं थी। जिस भय में उसने अपने-आप को बांध रखा था वह सब खत्म हो गया। तब हरलाल अपने आजाद दिल के चारों ओर बेछोर आसमान में महसूस करने लगा, मानो उसकी वह गरीब मां देखते-देखते घर-घर में विशाल रूप धारण करके सारे अंधेरे को घेरती जा रही हो। वे कहीं समा नहीं रही थीं। कलकत्ता के रास्ते, घाट, घर-बार, दुकान-बाजार, धीरे-धीरे उस आकार में समाकर गायब होते जा रहे थे—हवा भर गई, आसमान भर उठा, एक-एक करके नक्षत्र उसमें रच-पच गये—हरलाल के मन की सारी पीड़ा, सारी फिक्र, सारी चेतना उसमें थोड़ा-थोड़ा करके समाती गई, चली गई, गर्म भाप का बुलबुला एकदम फूट गया—अब तो

अंधेरा भी नहीं, रोशनी भी नहीं, केवल एक प्रगाढ़ पूर्णता रह गई।

गिरजे की घड़ी में एक बजा। गाड़ीवान ने अंधेरे मैदान में गाड़ी लेकर चक्कर काटते-काटते आखिर में खीझकर कहा, "बाबू, घोड़ा अब और नहीं चल सकता। बोलो-बोलो कहां जाना है ?"

कोई जवाब नहीं मिला। कोचवान ने उतरकर हरलाल को हिलाकर फिर पूछा। कोई जवाब नहीं। तब डरकर गाड़ीवान ने जांच-परखकर देखा, हरलाल की देह अकड़ी हुई थी। उसकी सांस नहीं चल रही थी।

'कहां जाना होगा' इस सवाल का हरलाल से और कोई जवाब नहीं मिल सका।

हालदार परिवार

इस परिवार में किसी तरह का झगड़ा होने का उचित कारण नहीं था। हालत भी अच्छी थी, लोग भी ठीक थे। फिर भी झगड़ा खड़ा हो गया। क्योंकि यदि उचित कारण होने पर ही आदमी का सब-कुछ घटित होता तब तो आदमी की दुनिया किताब की कापी के जैसी होती। जरा-सी सावधानी बरतते ही हिसाब में कहीं कोई भूल न होती; और अगर हो भी जाती तो उसे रबर से मिटाकर ठीक करने से ही काम चल जाता।

लेकिन आदमी के भाग्यदेवता को रस का ज्ञान है; पता नहीं गणित शास्त्र में उनकी चतुराई है या नहीं, लेकिन लगाव नहीं है। आदमी की जिन्दगी की जोड़-बाकी का सही परिणाम निकालने में वे मन से कुछ नहीं करते। इसलिए अपनी देख-रेख में उन्होंने एक चीज को जोड़ दिया है, वह है असंगति। जो हो सकता है उसे वह अचानक आकर मजबूर कर देती है। इसी से नाटक जम उठता है, दुनिया के दोनों कूलों को डुबोकर हंसने-रोने का तूफान चलता रहता है।

इसी वाक्य में भी वही घटा—जहां कमल-वन था वहां मस्त हाथी आ हाजिर हुआ। कीचड़ के साथ कमल का वेमेल मिलन हो गया। ऐसा न होता तो इस कहानी की रचना न हो पाती।

जिस परिवार की कहानी पेश की है, उसमें बेशक सबसे चतुर आदमी बनवारी लाल था। इसे वह खुद भी अच्छी तरह जानता था और इसी बात ने उसे बेचैन कर डाला था। इंजन की स्टीम जैसी योग्यता उसे अन्दर से ठेलती थी; सामने अगर उसे रास्ता मिलता तो ठीक यदि न मिलता तो जो आ जाता उसे ही धकेल देता।

उसके पिता मनोहरलाल का ढग पुरानी परिपाटी के बड़े आदमियों जैसा था। अपने समाज के सिर पर बैठकर वह उसके सर के गहने होकर रहें, यही उनकी इच्छा थी। नतीजतन समाज के हाथ-पैरों के साथ वे कोई मेल-जोल नहीं रखते थे। मामूली आदमी काम-काज करता है, चलता-फिरता है, वे काम-काज न करने और चलने-फिरने के बहुत-से धन्धों के केन्द्र स्थल में ध्रुव की तरह मौजूद रहते।

अक्सर देखा जाता है कि इस तरह के आदमी बिना कोशिश के अपने पास कम-से-कम दो-एक कड़े और खरे आदमियों को चुम्बक की तरह खींच लेते हैं। इसकी और कोई वजह नहीं, धरती पर एक ऐसे वर्ग का जन्म होता है जिसका कर्तव्य ही है सेवा करना। ये खुद सृष्टि आगे बढ़ाने के लिए ही ऐसे बेकार आदमियों को चाहते हैं जो अपना सोलह आना बोझ उनके ऊपर छोड़ सकें। इन सहज सेवकों को अपने काम में कोई खुशी नहीं मिलती; लेकिन और किसी आदमी को स्थापित करना, उसको पूरी तरह आराम पहुंचाना, उसको सब तरह की परेशानियों से बचाकर ले चलना, दुनिया और समाज में उसकी इज्जत बढ़ाना, इन्हीं बातों में उनको भारी बढ़ावा मिलता है। ये जैसे एक तरह के पुरुष-मां हैं सो भी अपने लड़कों के नहीं, पराये लड़कों के।

मनोहरलाल का नौकर रामचरण, उसकी अपनी देह की देख-भाल की कमी और सेहत के नुकसान का सिर्फ एक उद्देश्य था बाबू की देह की देखभाल करना। अगर उसके सांस लेने से बाबू के सांस लेने की दिक्कत दूर हो जाती तो वह दिन-रात लोहार की धौंकनी के जैसा हांफने के लिए तैयार था। बाहर के आदमी अक्सर सोचते कि मनोहरलाल अपने नौकर से बेकार की मेहनत कराकर उस पर ज्यादती करते और तकलीफ देते हैं क्योंकि अगर हाथ से छूने के बाद हुक्के की निगाली जमीन पर गिर पड़े

तो उसे उठाना कोई मुश्किल काम नहीं है फिर भी उसके लिए पुकारकर दूसरे कमरे से रामचरण को दौड़ाना बहुत गलत-सा लगता है, लेकिन इन सब बिलकुल बेकार के कामों में अपने को जरूरी तौर पर मशगूल रखने में ही रामचरण को ज्यादा-से-ज्यादा खुशी मिलती थी।

जैसा रामचरण था, उसी तरह उनका एक और नौकर था नीलकंठ। धन-दौलत की देखभाल की जिम्मेदारी इस नीलकण्ठ के ऊपर थी। बाबू की मेहरबानी से फल-फूलकर रामचरण खूब भरा-पूरा हो रहा था, लेकिन नीलकण्ठ की देह के कंकाल के उपर किसी तरह की जान नहीं थी, यह कहना ही ठीक होगा। बाबू की दौलत के दरवाजे पर वह जीता-जागता सूखे की तरह पहरा देता था। दौलत तो थी मनोहरलाल की, लेकिन उसके साथ पूरी तरह लगाव था नीलकण्ठ में।

नीलकण्ठ के साथ बनवारीलाल की खटपट बहुत दिनों से चल रही थी। मान लो, पिता के यहां दरबारगीरी करके बनवारी ने बड़ी बहू के लिए एक नया गहना बनवाने का हुक्म हासिल कर लिया। वह चाहता था कि वह रुपया लेकर अपनी मर्जी से चीज तैयार करावे। लेकिन ऐसा होने की गुंजायश नहीं थी। फिजूलखर्ची का सारा काम नीलकण्ठ के हाथों से ही होना चाहिए। नतीजा यह हुआ कि गहना बना तो सही, लेकिन किसी के मन के माफिक नहीं बना। बनवारी को पक्का विश्वास हो गया कि सुनार के साथ नीलकण्ठ की हिस्सेदारी चलती है। खरे आदमियों के दुश्मनों की कमी नहीं होती। लोगों से बनवारी यही बात सुनता आ रहा था कि नीलकण्ठ दूसरे लोगों को जिस हद तक महरूम रखता है उसके घर में उतना ही ज्यादा जमा होता जा रहा है। और इन दो गुटों में यह जो लड़ाई खड़ी हो गई थी, वह मामूली दस-पांच रुपये लेकर। नीलकण्ठ में दुनियादारी वाली अक्ल की कमी नहीं थी। यह बात समझना उसके लिए मुश्किल नहीं था कि बनवारी के साथ मेल न रखकर चलने से किसी न किसी दिन उस पर मुसीबत आ सकती है। लेकिन मालिक के धन के बारे में नीलकण्ठ को कंजूसी की बीमारी थी। जिस खर्च को वह बेकार समझता था उसे मालिक का हुक्म पाने पर भी वह किसी भी तरह नहीं कर सकता था।

दूसरी ओर बनवारी को अक्सर बेकार खर्च की जरूरत पड़ती रहती। आदमियों के कई गलत कामों की जड़ में जो वजह रहती है, वही वजह यहां भी जोर-शोर से मौजूद थी। बनवारी की घरवाली किरणलेखा की खूबसूरती के बारे में अलग-अलग राय हो सकती थी, उसको लेकर बहस करना बेकार है। उसमें जो राय बनवारी की थी, इस चर्चा में सिर्फ वही काम की है। दरअसल घरवाली को लेकर बनवारी के मन में जो लगाव था उसे घर की दूसरी औरतें हद को छूने वाला मानती थीं। मतलब, वे अपने पति से जितना प्यार चाहतीं, लेकिन पाती नहीं थीं, यह उतना था।

किरणलेखा की उम्र जितनी भी रही हो, देखने में बच्ची-सी लगती थी। घर की बड़ी बहू की शक्ल-सूरत जैसी मालकिन के ढंग की होनी चाहिए, वैसी जरा भी नहीं थी। सब मिलाकर वह जैसे बहुत कम हो।

बनवारी उसे प्यार से 'अणु' कहता। जब इससे भी मन को तसल्ली नहीं मिलती तो कहता 'परमाणु'। रसायन-शास्त्र की जिसको जानकारी है वे जानते हैं कि दुनिया बनने में अणु-परमाणुओं की ताकत ऐसी कुछ कम नहीं है।

किरण ने किसी भी दिन पति से किसी चीज की मांग नहीं की। उसका कुछ ऐसा अनमना भाव था जैसे उसे किसीसे कोई खास मतलब न हो। घर में उसकी बहुत-सी छोटी-बड़ी ननदें थीं, उसका मन सदा उन्हीं में लगा रहता। जवानी के नये-नये प्यार में जो एक एकान्त तपस्या होती है, वह उसे उतनी जरूरी महसूस नहीं होती थी। इसी वजह से बनवारी के साथ उसके बर्ताव में किसी चाह या इच्छा के तौर-तरीके नहीं दिखते थे। बनवारी से जो कुछ उसे मिलता उसे वह ठण्डे मन से कबूल करती। आगे बढ़कर कभी कुछ नहीं चाहती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि घरवाली कैसे खुश होगी यह बात बनवारी को खुद सोचकर जाननी पड़ती। घरवाली जहां खुद अपने मुंह से फरमाइश करती है, वहां उसे समझा-बुझाकर कुछ न कुछ कम करना मुमकिन होता है, लेकिन खुद अपने साथ मोल-भाव नहीं चल सकता। ऐसी जगह पर मांगकर किसी चीज के हासिल करने की बनिस्बत बिना मांगे मिली चीज पर खर्च ज्यादा पड़ जाता है।

फिर पति से प्यार की भेंट पाकर किरण को कितनी खुशी हुई, उसे ठीक से समझने का कोई रास्ता न था। इस बारे में सवाल करने पर वह कहती, "बढ़िया है, अच्छा है।" लेकिन बनवारी के मन का खटका किसी भी तरह दूर नहीं होता। पल-पल में उसे लगता शायद पसन्द नहीं आया। किरण पति को कुछ डांटकर कहती, "तुम्हारी तो आदत ही ऐसी है। न जाने नुक्ताचीनी क्यों करते रहते हो? क्यों, यह तो खूब अच्छा बना है।"

बनवारी ने स्कूली किताबों में पढ़ा था, संतोष मनुष्य का बहुत बड़ा गुण है। लेकिन घरवाली के स्वभाव में यह महान् गुण उसे तकलीफ पहुंचाता था। उसकी घरवाली ने तो उसे केवल खुश ही नहीं किया; वह उस पर हावी थी। वह भी घरवाली पर हावी होना चाहता था। उसकी घरवाली को तो कोई खास कोशिश नहीं करनी पड़ती थी—जवानी की खूबसूरती अपने-आप उछल रही थी, देखभाल में उसकी चतुराई खुद ही जाहिर हो जाती। लेकिन आदमी को ऐसी आसान सुविधा हासिल नहीं है; अपने अन्दर के पुरुष स्वरूप का परिचय देने के लिए उसे कुछ न कुछ करना पड़ता है। उसमें कोई एक खास ताकत है, इसका सबूत दिए बिना आदमी का प्यार जाहिर नहीं हो पाता है। और अगर कुछ भी न रहे दौलत जो ताकत का एक प्रतीक है, मोर के पंखों के समान घरवाली के सामने उस दौलत की सारी चकाचौंध दिखा चुकने पर मन को सन्तोष मिलता है। नीलकण्ठ ने बनवारी के प्यार के इस नाटक में बार-बार अड़चन डाली। बनवारी घर का बड़ा लड़का था, तो भी उसकी किसी बात में नहीं चलती थी, मालिक का आसरा पाकर नौकर होते हुए भी नीलकण्ठ उस पर रौब जमाता—उससे बनवारी को जिस दिक्कत और बेइज्जती का सामना करना पड़ता, वह किसी वजह से उतना नहीं होता था, जितना कामदेव के तरकश में मनचाहे बाण न जुटा पाने की अपनी कमी की वजह से होता था।

एक दिन इस धन-दौलत पर उसीका तो बेरोक-टोक कब्जा होगा लेकिन जवानी क्या जिन्दगी-भर रहेगी? वसन्त के रंगीन प्याले में फिर यह अमृत रस अपने-आप इस तरह नहीं भर उठेगा; तब रुपया किसी ऐश वाले की दौलत होकर खूब सख्त होकर जम पायेगा, पहाड़ की चोटी पर

जमी बर्फ की तरह उसमें बात-बात में लापरवाह मन के साथ अपने को बढ़ा देने का खेल नहीं होगा। रुपये की जरूरत तो इसी वक्त है, जब खुशी के लिए उसे खर्च करने की ताकत खत्म नहीं हुई है।

बनवारी के तीन खास शौक थे—कुश्ती, शिकार और संस्कृत-चर्चा। उसकी कापी संस्कृत की चर्चित कविताओं से लबालब भरी हुई थी। बादल के दिन, चांदनी रात में, दक्षिण की हवा के चलने पर बड़े काम आती थी। सहूलियत यह थी कि नीलकण्ठ इन कविताओं की अलंकारों की भरमार को कम नहीं कर सकता था। बढ़ा-चढ़ाकर कही बातें चाहे कितनी ज्यादा हों, कोई मुनीम-सरिश्तेदार उसके लिए जिम्मेदार नहीं थे। किरण के कान के लिए सोना लाने में कंजूसी की जाती थी लेकिन उसके कान के नजदीक जो मंदाक्रान्ता छंद गूंजता था उसकी एक भी मात्रा कम न होती और उसके विचार में कोई हद ही न रहती, ऐसा कहने में बढ़ा-चढ़ाकर कहना नहीं होगा।

बनवारी का चेहरा पहलवान के जैसा लम्बा-चौड़ा था। जब वह गुस्सा होता तब उसके डर से लोग घबरा जाते। लेकिन इस जवान आदमी का मन बहुत ही नर्म था। उसका छोटा भाई वंशीलाल जब छोटा था तब उसने उसे मां की तरह प्यार देकर पाला था। उसके दिल में जैसे प्यार-दुलार देने की भूख हो।

अपनी घरवाली को जो वह प्यार करता था उसमें यह चीज भी जुड़ी थी—प्यार-दुलार करने की यह इच्छा। किरणलेखा पेड़ के नीचे राह भूली किरण जैसी ही छोटी थी, छोटी होने के कारण ही उसने अपने पति के मन में एक बहुत बड़ा दर्द जगा रखा था; इस पत्नी को कपड़ों जेवरों से तरह-तरह से सजाकर देखने की उसकी बड़ी इच्छा थी। यह भोग करने की खुशी नहीं, यह किसी चीज के बनाने की खुशी थी। यह एक को अनेक करने की खुशी थी, किरणलेखा को कई रंगों में, कई रूपों में देखने की खुशी थी।

लेकिन केवल संस्कृत के श्लोकों का पाठ करने से ही बनवारी का यह शौक किसी भी तरह पूरा नहीं हो पाता था। उसके अपने भीतर एक आदमियों के लिए सहज स्वाभाविक अधिकार की भावना है, यह भी वह

जाहिर नहीं कर सका, और प्यार के साधन को तरह-तरह की चीजों से मालामाल कर देने की उसकी इच्छा भी पूरी नहीं हो पाती थी।

इस तरह पैसे वाले की यह औलाद अपनी इज्जत-आबरू, अपनी खूब-सूरत घरवाली, उसकी भरी जवानी—आम तौर पर लोग जिसकी चाह करते हैं, वह कुछ लिए हुए भी दुनिया में एक दिन मुसीबत की तरह उठ खड़ा हुआ।

सुखदा मधु कैवर्त की घरवाली थी जो मनोहरलाल का आसामी था। वह एक दिन घर के अन्दर आकर किरणलेखा के पैर पकड़कर रोने लगी। बात यह थी, कुछ साल पहले नदी में मछली पकड़ने का जाल डालने के काम के लिए हर बार की तरह मछुओं ने एक साथ मिलकर कर्जनामा लिखकर मनोहरलाल की कचहरी से हजार रुपया उधार लिया था। अच्छी मछली मिलने पर असल रुपया ब्याज के साथ चुका देने में कोई दिक्कत नहीं होती, इसलिए ऊंची ब्याज दर पर रुपया उधार लेने में ये लोग आगा-पीछा नहीं सोचते थे। उस साल वैसी मछली नहीं मिली, और संयोग से एक के बाद एक तीन साल तक नदी की धार में इतनी कम मछलियां आईं कि मछुओं का खर्च भी न निकल पाया; यहां तक कि वे उलटे कर्ज के जाल में फंस गए। जो मछुए बाहर के इलाकों के थे, वे तो फिर दिखाई ही नहीं दिए लेकिन मधु कैवर्त वहीं का आसामी था, जहां उसका पुश्तैनी मकान था। उसके भागने का कोई रास्ता न होने की वजह से कर्ज चुकाने की सारी जवाबदेही उसके ऊपर आ पड़ी। सब कुछ गंवा देने से अपने को बचा पाने की गुहार लेकर वह किरण के पास आई थी। किरण की सास के पास जाने से कोई फायदा नहीं होता। इसे सभी जानते थे, क्योंकि नीलकण्ठ के इन्तजाम में कोई नुक्स निकाल सकता था, इस बात को वे सोच भी नहीं सकती थीं। नीलकण्ठ के प्रति बनवारी के मन में बहुत शिकायतें, बौखलाहट थी, यह जानकर ही मधु कैवर्त ने अपनी घरवाली को किरण के पास भेजा था।

बनवारी चाहे जितना गुस्सा, चाहे जितनी अपनी बड़ाई करे, किरण साफ तौर पर जानती थी कि नीलकण्ठ के काम में दखलंदाजी करने का उसे कोई हक नहीं है। इसलिए किरण ने सुखदा को बार-बार समझाने

की कोशिश करते हुए कहा, "बेटी, क्या-क्या करूं, बताओ। तुम जानती हो इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है। मालिक हैं, मधु से कहो, उनको जाकर पकड़े।"

वह विश्वास तो पहले ही किया जा चुका था। मनोहरलाल के पास किसी बात की फरियाद करते ही वह उसके विचार का बोझ नीलकण्ठ के ऊपर ही छोड़ देते थे, इसमें कभी कोई हेर-फेर नहीं होता था। इससे फरियादी की मुश्किलें और भी बढ़ जाती थीं। दूसरी बात कोई अगर उनके पास अपील करना चाहता तो मालिक गुस्से से आग-बबूला हो उठते थे। अगर जमीन-जायदाद का झंझट उन्हें उठाना पड़ गया तो फिर उसका भोग करने में आराम ही क्या रहा !

सुखदा जब किरण के पास रो-पीट रही थी तभी बनवारी बगल के कमरे में बैठा हुआ अपनी बन्दूक की नली में तेल डाल रहा था। बनवारी ने सारी बातें सुनीं। किरण नर्म आवाज में बार-बार कह रही थी, "हम इसका कोई भी हल ढूंढ़ पाने में लाचार हैं।" यह बात बनवारी की छाती में नश्तर की तरह चुभ गई।

उस दिन माघ की पूर्णिमा फाल्गुन के शुरू में आकर पड़ी थी। दिन के वक्त की उमस को मिटाकर शाम को अचानक एक मदमस्त हवा चल पड़ी थी। कोयल कूक-कूक कर परेशान हुई जा रही थी। बार-बार एक ही सुर की चोट से वह न जाने कहां की किस उदासी को तहस-नहस कर डालने की कोशिश कर रही थी और आसमान में फूलों की खुशबू का मेला लग गया था, जैसे खचाखच भीड़ हो, जंगले के बिलकुल पास जनानी ड्योढी (अन्तःपुर) के बगीचे से मुचकुन्द फूल की खुशबू ने वसन्त के आसमान को नशे में बेसुध कर दिया था। किरण ने उस दिन लटकन[1] रंग की साड़ी तथा जूड़े में बेला फूलों की माला बांध रखी थी। इन पति-पत्नी के बीच चलते आये रिवाज के मुताबिक उस दिन बनवारी के लिए भी फागुन के मौसम की खुशी मनाने के लायक एक लटकन रंग की चद्दर और बेला के फूलों का गजरा तैयार किया गया था। रात का पहला पहर बीत गया तो भी बनवारी नहीं दिखा। यौवन का भरा प्याला आज

---

1. लटकन पेड़ के फल के बीज का लाल रंग।

उसे किसी तरह भी अच्छा नहीं लगा। प्यार के बैकुण्ठ लोक में इतनी बड़ी कुण्ठा लेकर वह कैसे घर आता ? मधु कैवर्त की तकलीफ दूर करने की ताकत उसमें नहीं थी। वह ताकत नीलकण्ठ में थी। ऐसे नालायक आदमी के गले में पहनने के लिए माला किसने गूंथी थी !

पहले उसने अपने बाहर के कमरे में नीलकण्ठ को बुलवाया और कर्ज चुकाने के एवज में मधु कैवर्त को बर्बाद करने से मना किया। नीलकण्ठ ने कहा, "मधु को अगर छूट दी जाएगी तो इस तिमाही के शुरू में ढेरों रुपया बाकी रह जाएगा; सभी उज्र करना शुरू कर देंगे।" बनवारी जब बहस में न जीत सका तो जो मुंह में आया बकने लगा। बोला, "नीच !" नीलकण्ठ ने कहा, "नीच न होता तो बड़े आदमी का आसरा क्यों लेता ?" उसने कहा, "चोर !" नीलकण्ठ ने कहा, "वह तो है ही, भगवान् जिसे अपना कुछ नहीं देते, दूसरे की सम्पत्ति से ही तो वह जान बचाता है।"

सारी गालियां उसने अपने सिर पर ले लीं; आखिर में कहा, "वकील बाबू बैठे हैं, उनके साथ काम की बात निबटा लूं। अगर जरूरत समझें तो फिर आऊंगा।"

बनवारी ने छोटे भाई वंशी को अपने गुट में खींचकर तभी पिता के पास जाने का तय किया। वह जानता था, अकेले जाने से कोई फायदा नहीं होगा। क्योंकि, इस नीलकण्ठ को लेकर पिता के साथ उसकी पहले ही खटपट हो चुकी थी। पिता उसके ऊपर नाराज थे ही। एक दिन था जब सभी सोचते थे कि मनोहरलाल अपने बड़े लड़के को सबसे अधिक चाहते हैं। लेकिन, अब लगता था, वंशी के साथ ही उनकी तरफदारी थी। इसलिए बनवारी ने वंशी को भी अपनी नालिश में शामिल करना चाहा।

वंशी बहुत भला लड़का था। इस परिवार में अकेले उसीने दो इम्तिहान पास किये थे। इस बार वह कानून के इम्तिहान की तैयारी कर रहा था। दिन-रात जागकर पढ़ते-पढ़ते उसके अन्दर में कुछ जमा हो रहा था या नहीं, यह ईश्वर ही जाने, लेकिन ऊपरी तौर पर खर्च के सिवा और कुछ भी नहीं था।

इस फागुन की शाम को उसके कमरे के जंगले बन्द थे। मौसम बदन

लने की बात से वह बहुत डरता था। हवा उसे जरा भी पसन्द न थी। टेबल पर मिट्टी तेल का एक लैम्प जल रहा था; कुछ किताबें जमीन पर तख्त की बगल में जमा थीं, कुछ टेबल पर; दीवान के ताक पर दवाइयों की कुछ शीशियां रखी थीं।

बनवारी की पेशकश से वह किसी भी तरह राजी नहीं हुआ। बनवारी गुस्सा होकर गरज उठा, "तू नीलकण्ठ से डरता है ?" वंशी इसका कोई जवाब न देकर चुप रह गया। असल में उसकी कोशिश हमेशा नीलकण्ठ को खुश रखने की रहती थी। वह लगभग सारा साल कलकत्ता के घर में ही बिताता। वहां तय रकम की बनिस्बत उसे ज्यादा की जरूरत पड़ ही जाती। इस सिलसिले में नीलकण्ठ को खुश रखने की उसे आदत हो गई थी।

वंशी को कायर, दब्बू, नीलकण्ठ के तलवे सहलाने वालों का सरदार कहकर गालियों की बौछार करके बनवारी अकेला ही पिता के पास जा हाजिर हुआ। मनोहरलाल अपने बाग के तालाब के घाट पर नंगे बदन आराम से हवा खा रहे थे। मुसाहिब लोग पास बैठे कलकत्ता के बैरिस्टर की जिरह से जिला कोर्ट में दूसरे गांव के जमींदार अखिल मजूमदार किस तरह हक्का-बक्का हो गए, उसी की कहानी मधुर बनाकर मालिक को सुना रहे थे। उस दिन वसन्त की शाम की खुशबू के साथ वह ब्योरा उनके लिए बहुत दिलचस्प था।

अचानक बनवारी ने बीच में आकर रंग में भंग कर दिया। भूमिका बांधकर अपनी बात को धीरे-धीरे सुनाने लायक उसकी हालत नहीं थी। उसने गला खंखारकर एकदम शुरू कर दिया, नीलकण्ठ के द्वारा उनका नुकसान हो रहा है। वह चोर है, मालिक का रुपया मारकर अपना पेट भरता है। इस बात का कोई सबूत नहीं था और वह सच भी नहीं थी। नीलकण्ठ की कोशिश के द्वारा सम्पत्ति बढ़ी थी और वह चोरी भी नहीं करता था। बनवारी ने सोचा था, नीलकण्ठ की सचाई पर अडिग विश्वास होने के कारण ही मालिक सब मामलों में उसके ऊपर इस तरह आंख बन्द करके निर्भर रहते हैं। यह उसकी गलतफहमी थी। मनोहरलाल के मन में पक्की धारणा थी कि नीलकण्ठ मौका मिलने पर चोरी करता है,

लेकिन इस वजह से उसको लेकर उनके मन में किसी तरह की चिढ़ नहीं थी, क्योंकि, हमेशा से इसी तरह दुनिया चलती चली आ रही है। नौकरों की चोरी की बचत से ही तो हमेशा बड़े घर पलते हैं। चोरी करने की चतुराई जिनमें नहीं है, मालिक के धन की देख-रेख करने की अक्ल ही उनमें कहां से आएगी? धर्मपुत्र युधिष्ठिर से तो जमींदारी का काम नहीं चल सकता। मनोहर ने बहुत खीझकर कहा, "अच्छा, नीलकण्ठ क्या करता है या नहीं करता, इस बात की फिक्र तुम्हें न ीं करनी होगी।" साथ ही यह भी कहा, "देखो न वंशी का तो कोई झंझट नहीं है। वह कैसा पढ़-लिख रहा है। वह लड़का फिर भी थोड़ा-बहुत आदमी जैसा है।"

इसके बाद अखिल मजूमदार की दुर्गति की कहानी में रस नहीं आया। नतीजतन, मनोहरलाल के लिए उस दिन वसन्त की हवा बेकार ही बही और तालाब के काले जल के ऊपर चांदनी के झिलमिलाने का कोई मतलब नहीं निकला। उस दिन शाम बेकार नहीं गई तो केवल वंशी और नीलकण्ठ के लिए। जंगला बन्द करके वंशी बहुत रात तक पढ़ता रहा और वकील के साथ राय-मशविरा करते हुए नीलकण्ठ ने आधी रात गुजार दी।

कमरे का दीया बुझाकर किरण जंगले के पास बैठी थी। काम-काज आज उसने बहुत जल्दी खत्म कर लिया था। रात का खाना-पीना बाकी था, लेकिन अभी तक बनवारी ने खाना नहीं खाया था, इसलिए वह इन्तजार कर रही थी। मधु कैवर्त की बात उसे याद भी नहीं थी। बनवारी मधु के दुख का कोई हल नहीं निकाल सका, इस बारे में किरण के मन में जरा भी गम नहीं था। अपने घरवाले से वह कभी किसी खास ताकत की पहचान पाने के लिए तैयार नहीं थी। परिवार के बड़प्पन में ही उसके पति का बड़प्पन था। उसका पति उसके ससुर का बड़ा लड़का था, उसे इससे भी ज्यादा बड़ा होना चाहिए, इस तरह की बात कभी उसके मन में भी नहीं आई। आखिर यह तो गोसाईगंज के मशहूर हालदार के कुल के थे।

बनवारी बहुत रात तक बाहर के बरामदे में टहलने के बाद कमरे में

आया। वह भूल गया था कि उसने खाना नहीं खाया है। किरण उसके इन्तजार में बिना खाये बैठी हुई थी—इस घटना ने उस दिन जैसे उसको खास तौर से चोट पहुंचाई हो। किरण की इस तकलीफ को कबूल करने के साथ किरण के प्रति उसकी अपनी अनदेखी का जैसे मेल न वैठ पाया हो। खाने का कौर उसके गले में अटकने लग गया। बनवारी ने बहुत उत्तेजना के साथ पत्नी से कहा, "जैसे भी होगा मधु कैवर्त को मैं बचाऊंगा।" किरण ने उसकी इस वेकार की उत्तेजना पर चकित होकर कहा, "लो सुनो! तुम उसे कैसे बचाओगे?"

मधु का कर्ज बनवारी खुद चुका देगा, यही उसका निश्चय था लेकिन बनवारी के हाथ में कभी रुपया टिकता नहीं। उसने तय किया कि अपनी तीन अच्छी बन्दूकों में से एक बन्दूक और एक कीमती हीरे की अंगूठी बेचकर वह पैसा इकट्ठा करेगा। लेकिन, गांव में इन सब चीजों के सही पैसे नहीं मिलेंगे, और बेचने की कोशिश करने पर चारों ओर लोग कानाफूसी करेंगे। इस वजह से कोई-न-कोई बहाना करके बनवारी कलकत्ता चला गया। जाते हुए मधु को बुलाकर तसल्ली दे गया कि उसके लिए डरने की कोई बात नहीं है।

इधर बनवारी के आसरे में गया हुआ समझकर नीलकण्ठ मधु पर गुस्से से आग-बबूला हो गया। चपरासियों की ज्यादतियों से कैवर्त मोहल्ले की इज्जत मुसीबत में पड़ गई।

जिस दिन बनवारी कलकत्ता से लौटकर आया उसी दिन मधु का लड़का स्वरूप दौड़ता-हांफता हुआ आया और अचानक बनवारी के पैर पकड़कर 'हाय-हाय!' करके रोने लग गया।

"क्या है रे, बात क्या है?" पूछने पर स्वरूप ने कहा, "मेरे पिता को नीलकण्ठ ने कल रात से कचहरी में बन्द कर रखा है।" बनवारी की सारी देह गुस्से से कांपने लगी। कहा, "अभी जाकर थाने में खबर कर आ।"

"मर गए! थाने में खबर! नीलकण्ठ के खिलाफ!" उसके पैर उठना नहीं चाहते थे। आखिर में बनवारी के धमकाने पर उसने थाने में जाकर खबर कर दी। पुलिस ने तुरन्त कचहरी में आकर मधु को बंधन

से छुड़ाया और नीलकण्ठ तथा कचहरी के कई चपरासियों को मुजरिम के तौर पर मजिस्ट्रेट के पास चालान कर दिया।

मनोहर बड़े परेशान हो उठे। उनके मुकदमे के मन्त्री घूस के बहाने पुलिस के साथ मिलकर रुपया लूटने लगे। कलकत्ता से एक बैरिस्टर आया। वह बिलकुल कच्चा था। नया पासशुदा। सुविधा इतनी ही थी कि जितनी फीस उसके नाम खाते में लिखी जाती थी, उतनी फीस उसकी जेब में नहीं पहुंचती थी। दूसरी ओर मधु कैवर्त की ओर जिला अदालत का एक होशियार वकील तैनात हुआ। उसका खर्च कौन दे रहा था, पता नहीं चला। नीलकण्ठ को छः महीने की सजा हुई। हाईकोर्ट की अपील में भी वह ज्यों की त्यों बहाल रही।

अंगूठी और बन्दूक की सही कीमत में बिकना बेकार नहीं गया। नतीजतन मधु बच गया और नीलकण्ठ को जेल हो गई। लेकिन इस वाकये के बाद मधु अपने घर में टिके कैसे? बनवारी ने उसको तसल्ली देकर कहा, "तू रह, तुझे कोई डर नहीं है।" किसके बूते पर तसल्ली दी थी, यह वही जाने, शायद अपनी ताकत के बल पर।

इस मामले की जड़ में बनवारी था, इसको छिपा रखने का कोई खास जतन उसने नहीं किया। बात जाहिर भी हो गयी, यहां तक कि, मालिक के कानों तक पहुंची। उन्होंने नौकर की मार्फत कहला भेजा, "बनवारी कभी मेरे सामने न आवे।" बनवारी ने पिता की आज्ञा को अनदेखा नहीं किया।

किरण अपने पति का बर्ताव देखकर गुम रह गयी। यह क्या माजरा है! घर का बड़ा लड़का—पिता के साथ बोलचाल बन्द! उसके ऊपर अपने कारिन्दों को जेल में भेजकर दुनिया के सामने अपने परिवार का सिर नीचा कर देना। वह भी इस एक मामूली आदमी मधु कैवर्त को लेकर।

अजीब बात थी। इस कुल में कितने बड़े बाबू जन्मे और ऐसे नीलकण्ठों की भी कोई कमी नहीं रही। नीलकण्ठ धन के इन्तजाम का सारा बोझ खुद अपने ऊपर लेते रहे और बाबू पूरी तरह जैसे-तैसे कुल-गौरव को बचाने में लगे रहे। ऐसी उलटी गंगा तो कभी नहीं बही।

आज इस परिवार के बड़े बाबू के पद की गिरावट से बड़ी बहू की प्रतिष्ठा को धक्का लगा। इससे इतने दिन बाद आज पति को लेकर किरण की सही उपेक्षा की बात आ जुटी। इतने दिन बाद उसकी वसन्त काल की लटकन रंग की साड़ी एवं जूड़े की फूलों की बेल की माला शर्म से मुरझा गई।

किरण की उम्र हो गयी थी फिर भी कोई बच्चा नहीं हुआ था। इस नीलकण्ठ ने ही एक दिन मालिक की राय लेकर लड़की देखकर बनवारी का एक और ब्याह लगभग पक्का कर लिया था। बनवारी हालदार वंश का बड़ा लड़का था। सब बातों के पहले यह बात तो ख्याल में रखनी ही थी। वह निस्सन्तान रहेगा, यह तो हो ही नहीं सकता था। इस बात से किरण की छाती धक्-धक् करके धड़कने लगी। लेकिन, इसको मन-ही-मन बिना जाने ही वह नहीं रह सकी कि बात वाजिब थी। तब भी उसने नीलकण्ठ के ऊपर जरा भी गुस्सा नहीं किया, उसने अपनी किस्मत को ही कसूरवार ठहराया। उसका पति अगर गुस्सा होकर नीलकण्ठ को मारने न जाता और ब्याह के रिश्ते को तोड़कर पिता-माता के साथ लड़ाई-झगड़ा न करता तो किरण उसको गलत न मानती। यहां तक कि बनवारी ने अपने कुल की बात न सोची। इससे कहीं अन्दर से किरण के मन में बनवारी को लेकर कुछ चिढ़ हो गयी। बड़े घर की जिम्मेदारी क्या मामूली जिम्मेदारी है? उसको सब कुछ अनदेखा करने का हक है। उसके पास किसी जवान औरत या किसी दुखी कैवर्त के सुख-दुख की कीमत ही कितनी है!

आमतौर पर जो कुछ अपने-आप होता रहता है, कभी-कभी वैसा न होने पर कोई माफ नहीं कर सकता, यह बात बनवारी किसी भी तरह नहीं समझ सका। उसके लिए पूरी तरह से घर का बड़ा बाबू होना ही वाजिब था, और किसी तरह के गलत सही की फिक्र करके यहां के बहाव में अड़चन डालने में उसका मतलब हल नहीं होता था, यह उसको छोड़कर सबके लिए बहुत स्पष्ट था।

इसको लेकर किरण ने अपने देवर से कितना दुख जाहिर किया था। वंशी होशियार था; उसे बदहजमी की शिकायत रहती थी और थोड़ी-सी

हवा लगते ही वह जुकाम-खांसी से परेशान हो जाता, लेकिन वह ठौर-ठिकाने का आदमी गम्भीर और बुद्धिमान् था। वह अपनी कानून की किताब का जो भाग पढ़ रहा था, उसे टेबल पर उलटकर रखते हुए उसने किरण से कहा, "यह पागलपन के अलावा और कुछ नहीं है।" किरण ने बहुत बेचैनी से सिर हिलाकर कहा, "जानते हो देवर जी, तुम्हारे भैया जब तक ठीक रहते हैं तब तक ठीक है, लेकिन अगर एक बार बिगड़ जाएं तो फिर उन्हें कोई नहीं सम्भाल पाता। मैं क्या करूं, बताओ तो।"

जब परिवार के सब समझदार लोगों के साथ किरण की राय पूरी तरह मिल गयी तो बनवारी के मन में यही बात सबसे ज्यादा खटकी। यह एक जरा-सी स्त्री, अधखिले चम्पा के फूल के जैसी नाजुक, इसके दिल को अपने दर्द के पास खींच लाने में आदमी की सारी ताकत हार मान गयी। आज के दिन अगर किरण बनवारी के साथ ठीक से मिल सकती तो उसके दिल की चोट देखते-ही-दखते इस तरह बढ़ न जाती।

मधु का बचाव करना होगा यह मामूली जिम्मेदारी की बात चारों ओर के दबाव-ताड़ना की वजह से बनवारी के सामने सही में एक सनक बन गयी। इसको देखते हुए और सब बातें उसके लिए बेकार हो गईं। दूसरी ओर जेल से नीलकण्ठ ठीक-ठाक लौट आया जैसे वह जमाई षष्ठी[1] का न्यौता पूरा करने गया था। वह दुबारा पहले की तरह ठीक-ठाक अपने काम में जुट गया।

मधु का घर उजाड़े बिना प्रजा के सामने नीलकण्ठ की इज्जत बच पा नहीं रही थी। इज्जत को लेकर तो उसे ज्यादा फिक्र नहीं थी लेकिन आसामियों के उसे न मानने पर उसका काम नहीं चल सकता था, इसी वजह से उसको यह सब करना पड़ा। इसलिए मधु को तिनके की तरह उखाड़ने के लिए उसने अपने हंसिये पर शान चढ़ाना शुरू किया।

इस बार बनवारी छिपा नहीं रहा। उसने नीलकण्ठ को साफ-साफ बता दिया कि चाहे जो हो, वह मधु को बर्बाद नहीं होने देगा। पहले तो, मधु का जो कर्ज था वह उसने अपने पास से पूरा चुका दिया, उसके बाद

1. बंगाल में जेठ के महीने में षष्ठी के दिन दामाद को बुलाकर खूब आव-भगत से खिला-पिलाकर पैसे-कपड़े वगैरह भेंट में देते हैं।

और कोई चारा न देखकर वह खुद जाकर मजिस्ट्रेट को सूचना दे आया कि नीलकण्ठ मधु को मुसीबत में डालने की कोशिश कर रहा है।

बनवारी के सभी भला चाहने वालों ने उसको समझाया, जिस तरह की घटनायें घट रही थीं, उससे मनोहर किसी दिन उसको छोड़ देगा। छोड़ने पर जो-जो तकलीफें भुगतनी होती हैं वे अगर न होतीं तो इतने दिनों में मनोहर ने उसको कब का चलता कर दिया होता। लेकिन, बनवारी की मां मौजूद थी और अपने तरह-तरह के लोगों की तरह-तरह की राय थी, उसे लेकर कोई उलझन खड़ी करने के वे एकदम खिलाफ थे। इसलिए अभी तक मनोहर चुप थे।

होते-होते एक दिन सुबह अचानक दिखाई पड़ा, मधु के घर में ताला लगा है। रात ही रात में वह कहां चला गया था, इसका पता नहीं। मामला बहुत बिगड़ते देखकर नीलकण्ठ ने जमींदार सरकार से रुपया देकर उसको परिवार के साथ काशी भेज दिया था। पुलिस यह बात जानती थी; इसलिए कोई हंगामा नहीं हुआ। नीलकण्ठ ने चतुराई से अफवाह उड़ा दी कि मधु को उसके बाल-बच्चों के साथ अमावस्या की रात को काली पर बली चढ़ाकर लाशों को थैलों में भरकर गंगा की मझ-धार में डुबा दिया गया है। डर से सबकी देह सिहर उठी और नीलकण्ठ की आम लोगों में इज्जत पहले की बनिस्बत बहुत ज्यादा बढ़ गई।

बनवारी जिस बात को लेकर पागल था फिलहाल उसका हल हो गया; लेकिन दुनिया उसके लिए पहले जैसी नहीं रही।

कभी बनवारी वंशी को बहुत चाहता था, आज देखा, वंशी उसका कोई नहीं, वह हालदार परिवार का था। और उसकी किरण, जिसकी सूरत ने जवानी के दिनों से पहले ही धीरे-धीरे दिल में फूल-फूलकर उसके दिल-दिमाग को छा लिया था, वह भी पूरी तरह उसकी नहीं थी, वह भी हालदार परिवार की थी। एक दिन था, जब नीलकण्ठ की फरमाइश से बना गहना उसकी इस मनमोहिनी किरण की देह पर अच्छी तरह से सज न पाने के कारण बनवारी बौखला जाता था। आज देखा, कालिदास से शुरू करके अमरुक और चौर कवियों की जिन सारी कविताओं के सुहाग से प्रियतमा को सजाया करता आ रहा था वह हालदार परिवार की इस

बड़ी बहू को किसी भी तरह शोभा नहीं दे रहा था ।

हाय रे ! वसन्त की हवा अब भी बहती थी, रात में सावन की बारिश अब भी रिमझिम पड़ती थी और प्यासे प्यार की पीड़ा खाली दिल के राह-रास्ते पर रोती हुई फिर रही थी ।

प्यार की गहनता की सभी को तो जरूरत नहीं है; दुनिया में ज्यादा-तर लोगों का काम थोड़े से साधन से ही अच्छी तरह चल जाता है । उस नपे-तुले ढंग से लम्बी-चौड़ी दुनिया के काम में कोई रुकावट नहीं आती, लेकिन कई लोगों का इससे पूरा नहीं पड़ता । वे अनजान बहेलिये की तरह केवल अण्डे में से मिले न कुछ पदार्थ को लेकर ही जिन्दा नहीं रहते, वे अण्डा फोड़कर बाहर निकल आते हैं । उन्हें अपनी कोशिश से खाने की चीजों को जुटाने के लिए बड़ी जगह चाहिए । बनवारी उसी तरह की भूख लेकर पैदा हुआ था, अपने प्यार को अपनी मर्दानगी से सफल करने के लिए उसका मन मचल रहा था, लेकिन वह जिस ओर मुड़ना चाहता था, उसी ओर हालदार परिवार की पक्की दीवार थी; हिलते-जुलते ही उसका सिर टकरा जाता था ।

दिन फिर पहले की ही तरह बीतने लगे । पहले की वनिस्बत बनवारी शिकार में ज्यादा मन लगाने लगा । इसके अलावा बाहर से उसकी जिंदगी में और कोई खास बदलाव नहीं दिखता था । घर में वह खाना खाने जाता, खाने के बाद घरवाली के साथ अच्छी-खासी बातचीत भी होती थी । मधु कैवर्त को किरण ने आज भी माफ नहीं किया था, क्योंकि इस परिवार में उसके घरवाले ने अपनी इज्जत जो खो दी थी और उसकी असली वजह था मधु । इसलिए पल-पल में न जाने क्यों उस मधु की बात कड़वी होकर किरण के मुंह पर आ जाती । मधु की नस-नस में शैतानी भरी थी, वह शैतानों में अगुआ था, और मधु पर तरस खाने का मतलब था पूरी तरह ठगा जाना; इस बात को बार-बार अच्छी तरह से कहने पर भी वह थकती नहीं थी । पहले दो-एक दिन बनवारी ने टोकने की कोशिश करके किरण की नाराजगी को और बढ़ा दिया था, उसके बाद से वह कोई टोक-टाक नहीं करता था । इस तरह अपने रोजमर्रा की घरेलू जिन्दगी को वह चलाता चल रहा था; किरण उसमें किसी तरह की

त्रुटि या कमी को महसूस नहीं करती, लेकिन अन्दर ही अन्दर बनवारी की जिन्दगी बेरंग बेजान टूटी और प्यासी होती जा रही थी।

इसी बीच पता लगा कि परिवार की छोटी बहू, वंशी की घरवाली मां बनने वाली है। सारे परिवार में आशा की लहर दौड़ उठी। इस महान् कुल को लेकर जिम्मेदारी निभाने में किरण से जो कमी रह गई थी, इतने दिन बाद उसके पूरे होने की उम्मीद दिखी; अब षष्ठीदेवी की कृपा से लड़की न होकर लड़का होने में ही खैर थी।

लड़का ही पैदा हुआ। छोटे बाबू कालेज के इम्तिहान में पास हुए और कुल के इम्तिहान में भी पहला स्थान पाया। उनका सम्मान बराबर बढ़ रहा था, अब उनकी इज्जत की कोई हद न रही।

सभी का ध्यान उस बच्चे पर आ टिका। किरण तो उसको पल-भर के लिए गोद से नहीं उतारना चाहती थी। उसकी ऐसी हालत हो गई कि मधु कैवर्त की आदत के टेढ़ेपन की बात भी वह लगभग भूल-सी गई थी।

बनवारी बच्चों को बहुत प्यार करता था। छोटे-कमजोर, नाजुक बच्चों के लिए उसमें गहरे प्यार और दया के भाव थे। हर आदमी को ईश्वर कोई ऐसी खूबी दे देते हैं जो उसके स्वभाव के खिलाफ होता है, अगर ऐसा न होता तो बनवारी चिड़ियों का शिकार कैसे करता था, समझ में नहीं आता।

किरण की गोद में एक बच्चे को देखने की चाह बनवारी के मन में बहुत दिनों से मौजूद थी। इस कारण वंशी के लड़का होने पर पहले तो उसके मन में एक तरह की जलन और दुख पैदा हुआ पर उसको झटक फेंकने में उसे देर नहीं लगी। इस बच्चे को बनवारी बहुत प्यार कर सकता था, लेकिन उसमें अड़चन यह हो गई कि जैसे-जैसे दिन बीतने लगे किरण उसको लेकर बहुत ज्यादा मगन रहने लगी। घरवाली के साथ बनवारी के मिलने में बहुत अड़चनें आने लगीं। बनवारी साफ-साफ समझ गया कि इतने दिन बाद किरण को कुछ ऐसा मिल गया है जो उसके मन को सही में भरपूर कर सकता है। बनवारी जैसे अपनी घरवाली के दिल के हरम का एक किरायेदार भर हो; जितने दिन घर का मालिक गैर-हाजिर था, उतने दिन सारे घर का वह इस्तेमाल करता था, कोई रोक-

टोक करने वाला नहीं था—अब घर का मालिक आ गया था, इससे किराये का आदमी बाकी सब कुछ छोड़कर केवल अपने कोने वाले कमरे पर ही दखल रखने का हकदार था। किरण प्यार में कहां तक डूब सकती थी, उसकी अपने-आप को अर्पित करने की कितनी ताकत थी, यह बनवारी ने जब देखा तब उसका मन जैसे सिर हिलाकर बोला, "इस दिल को मैं जगा तो नहीं पाया, लेकिन जितना मुझसे हो सकता था उतना तो किया।"

केवल इतना ही नहीं, इस लड़के का मार्फत वंशी का कमरा ही जैसे किरण के लिए ज्यादा अपना हो गया। उसकी सारी राय-बात, सोचना-विचारना वंशी के साथ ही अच्छी तरह जमता। उस तेजअक्ल पतली देह, बिना खून के कमजोर और कातर आदमी के बारे में बनवारी की उपेक्षा धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही थी। दुनिया के सब आदमी बनवारी बनिस्बत उसीको सब मामलों में लायक समझें यह तो बनवारी ने बर्दाश्त किया लेकिन आज जब उसने बार-बार देखा कि आदमी की शक्ल मे उसकी घरवाली के लिए वंशी की कीमत ज्यादा थी, तब अपनी किस्मत और दुनिया को लेकर उसका मन खुश नहीं हुआ।

इसी बीच इम्तिहान जब नजदीक थे कलकत्ता के घर से खबर आई कि वंशी को बुखार है और डाक्टर बीमारी को लाइलाज बताकर खतरा जाहिर कर रहे हैं, बनवारी ने कलकत्ता जाकर दिन-रात जगकर वंशी की सेवा की, लेकिन उसको बचा नहीं पाया।

मौत ने बनवारी की याददाश्त में सारा कांटा निकाल लिया। वंशी उसका छोटा भाई था और बचपन में भैया की गोद उसके प्यार की ठीया थी। यह बात उसके मन में आंसुओं से धुलकर कौंध गई।

इस बार लौटकर पूरे मन से बच्चे का पालन-पोषण करने का उसने निश्चय किया लेकिन बच्चे के बारे में किरण को उसके प्रति विश्वास नहीं रहा था। उसके लिए अपने पति के मन में आए दुराव को उसने पहले से ही भांप लिया था। पति के बारे में किरण के मन में न जाने कैसा एक विचार बन गया था कि दूसरे आम लोगों के लिए जो बात सहज थी, उसके पति के पास वही बात ठीक इसकी उलटी थी। उनके कुल का यही तो एकमात्र कुल-दीपक था, इसका मोल क्या था, इसे सभी समझते

थे। लेकिन इस कारण उसके पति इसे नहीं समझते थे। किरण के मन में हमेशा डर बना रहता था कि कहीं बनवारी की जलन-भरी नजर से बच्चे का कोई अशुभ न हो। उसका देवर नहीं बचा, किरण के बच्चा होने की उम्मीद थी, यह कोई सोच नहीं सकता था, इसलिए इस बच्चे को कैसे भी सब तरह के अशुभ से बचाकर रख सकने में ही खैर थी। इससे वंशी के लड़के की देखभाल करने का रास्ता बनवारी के लिए बहुत आसान नहीं रहा।

घर के सब लोगों के प्यार के बीच लड़का बड़ा होने लगा। उसका नाम रखा गया हरिदास। इतने अधिक लाड़-प्यार की छाया में उसने जाने कैसी दुबली-पतली और नाजुक शक्ल पाई। तागे, गंडे तावीज से उसकी सारी देह ढकी थी, हित चाहने वालों की भीड़ से वह सदा घिरा रहता।

बीच-बीच में वक्त-बेवक्त बनवारी के साथ उसकी मुलाकात होती। ताऊ के घोड़े पर चाबुक चलाना उसे बड़ा अच्छा लगता था। देखते ही कहता था, 'चाबु'। बनवारी कमरे से चाबुक लाकर हवा में सांय-सांय आवाज करता रहता, इससे वह बड़ा खुश होता। बनवारी कभी-कभी उसे अपने घोड़े पर बैठा देता, इससे घर के सब लोग एकदम 'हा-हा' करके दौड़ आते। बनवारी कभी-कभी अपनी बन्दूक लेकर उसके साथ खेलता, किरण देख लेती तो दौड़कर बच्चे को दूर हटा ले जाती लेकिन इन सब खतरनाक मन-बहलावों से ही हरिदास का सबसे ज्यादा लगाव था। इससे सब तरह से सबके मना करते रहने पर ताऊ के साथ उसकी खूब दोस्ती हो गई।

एक लम्बे वक्त के बेखटके से गुजर जाने के बाद एक बार अचानक इस परिवार में मौत का आना हुआ। पहले मनोहर की घरवाली की मौत हुई। उसके बाद नीलकण्ठ जब मालिक के लिए ब्याह की बातचीत और लड़की खोज कर रहा था तभी ब्याह की लगन के पहले ही मनोहर की मौत हो गई। तब हरिदास की उम्र आठ साल थी। मौत के पहले मनोहर खास तौर से अपने इस छोटे वारिस को किरण और नीलकण्ठ के हाथों में सौंप गए थे, बनवारी से कोई बात ही नहीं की थी।

बक्स से जब वसीयतनामा निकला, तब पता चला मनोहर अपनी सारी जायदाद हरिदास को दे गए थे। बनवारी जिन्दगी-भर दो सौ रुपये महीने के हिसाब से खाना-खर्चा पायेंगे। नीलकण्ठ वसीयतनामे का एग्जीक्यूटर था; उसके ऊपर यह जिम्मा था कि वह जितने दिन जिन्दा रहे, हालदार परिवार की धन-दौलत और गृहस्थी की देखभाल वही करे।

बनवारी समझ गए कि इस परिवार में उन्हें न कोई लड़का सौंपकर ही बेफिक्र रह सकता है और न धन-दौलत सौंपकर ही। वे कुछ नहीं कर सकते, सब कुछ बर्बाद कर देते हैं, इस बारे में इस परिवार में सभी एक राय के थे। इसलिए वे ठीक तरह से खाना खाकर कोने के कमरे में सोएंगे, उनके लिए यही तय किया गया था।

उन्होंने किरण से कहा, "मैं नीलकण्ठ की पेंशन खाकर जिन्दा नहीं रहूंगा। यह घर छोड़कर मेरे साथ कलकत्ता चलो।"

"मैया री, यह भी कोई बात है! यह तो तुम्हारे ही बाप की जायदाद है और हरिदास तो तुम्हारे अपने ही लड़के जैसा है। उसके नाम जायदाद लिख दी गई है, इस पर तुम गुस्सा क्यों करते हो?"

हाय-हाय! उसके पति का दिल कितना सख्त है। इस दुधमुंहे बच्चे के लिए भी उनके मन में जलन है। उसके ससुर ने जो वसीयतनामा लिखा था, किरण मन ही मन उसका पूरा समर्थन करती थी। उसका पक्का विश्वास था कि बनवारी के हाथ में अगर जायदाद पड़ जाती तो राज्य के जितने छोटे आदमी थे, जितने यदु, मधु, जितने कैवर्त और आगुरियों की भीड़ थी वह उनको ठगकर उनके लिए कुछ भी बाकी न छोड़ती और हलदार कुल की यह भावी आशा एक दिन बीच में ही डूब जाती। ससुर के कुल में रोशनी करने के लिए दीया तो घर में आ गया था, अब उसका आसरा न बर्बाद हो इसके लिए नीलकण्ठ ही तो जिम्मेदार था।

बनवारी ने देखा, नीलकंठ आंगन में आकर हर कमरे के सारे सामान की सूची बना रहा है और जहां जितने सन्दूक-बक्स हैं, उनमें ताला लगा रहा है। बाद में किरण के सोने के कमरे में आकर वह बनवारी की रोजमर्रा की जिन्दगी में इस्तेमाल आने वाली सारी चीजों की सूची

बनाने लगा। नीलकण्ठ का आंगन में आना-जाना था, इसलिए किरण उससे पर्दा नहीं करती थी। किरण ससुर के दुख में पल-पल में आंसू पोंछते हुए रुंधे गले से पूरे ब्यौरे के साथ चीजें समझाने लगी।

बनवारी ने शेर की तरह गरजते हुए नीलकण्ठ से कहा, "तुम अभी मेरे कमरे से बाहर निकल जाओ!"

नीलकण्ठ ने नरम होकर कहा, "बड़े बाबू, मेरी तो कोई गलती नहीं है। मालिक के वसीयतनामे के मुताबिक मुझे तो सब कुछ समझ-बूझ लेना होगा। साज-सामान सभी तो हरिदास का है।"

किरण ने मन ही मन कहा, 'देखो जरा इनका हाल! हरिदास क्या पराया है। अपने लड़के की जायदाद का इस्तेमाल करने में शर्म कैसी? और साज-सामान आदमी के साथ जायेगा क्या? आज नहीं तो कल बाल-बच्चे ही तो भोग करेंगे?'

इस घर की जमीन बनवारी के पैरों में कांटे की तरह चुभने लगी। इस घर की दीवार उसकी आंखों को जैसे जलाने लगी। उसे दुख किस बात का था, यह पूछने वाला भी इस बड़े परिवार में कोई नहीं था।

इसी वक्त घर-द्वार सब छोड़कर बाहर चले जाने के लिए बनवारी का मन बेचैन हो उठा। लेकिन उसके गुस्से की लपट ठंडी नहीं होना चाहती थी। वह चला जाए और नीलकण्ठ आराम से सर्वेसर्वा बन जाए, यह सोचना वह बर्दाश्त नहीं कर सका। अभी भी जी-भरकर कोई तोड़-फोड़ और बर्बादी किये बिना उसका मन ठण्डा नहीं हो रहा था। वह बोला, "नीलकण्ठ कैसे सम्पत्ति की देखभाल करता है, मैं देखूंगा।"

बाहर अपने पिता के कमरे में जाकर देखा, उसमें कोई नहीं था। सभी आंगन के बर्तन-बासन और गहने आदि की देखभाल करने गए हुए थे। बहुत सावधान आदमियों से भी भूलें हो जाती हैं। नीलकण्ठ को यह ध्यान नहीं था कि मालिक का बक्स खोलकर वसीयतनामा निकालने के बाद बक्स में ताला नहीं लगाया गया। उस बक्स में बण्डल में बंधी सारी कीमती दलीलें सम्भालकर रखी थीं। उन प्रमाण-पत्रों के ऊपर ही इस हालदार कुल की धन-सम्पत्ति कायम थी।

बनवारी इन प्रमाण-पत्रों के बारे कुछ भी नहीं जानता था, लेकिन

ये किस तरह के थे और इनके न रहने पर मामले-मुकदमे में पग-पग पर कैसा अटकाव पैदा होगा, यह वह समझता था। कागज-पत्र लेकर एक रूमाल में बांधकर वह अपने बाहर के बाग में चम्पा के नीचे बंधे हुए चबूतरे पर बैठकर बहुत देर तक सोचता रहा।

दूसरे दिन क्रियाकर्म के बारे में बातचीत करने के लिए नीलकण्ठ बनवारी के पास आया। नीलकण्ठ ऊपरी तौर पर तो बहुत नम्र लग रहा था किन्तु उसके चेहरे पर ऐसा भाव था, या क्या था, जिसे देखकर या कल्पना करके बनवारी की सारी देह जल उठी। उसे लगा, नीलकण्ठ नर्मी दिखाकर उस पर व्यंग्य कर रहा है।

नीलकण्ठ बोला, "मालिक के श्राद्ध के बारे में…"

बनवारी ने उसकी बात पूरी नहीं होने दी, बीच में ही बोल उठा, "सो मैं क्या जानूं।"

नीलकण्ठ ने कहा, "यह क्या कहते हैं! आप ही तो श्राद्ध के अधिकारी हैं।"

"क्या कहने हैं अधिकार के! श्राद्ध का अधिकार! दुनिया में सिर्फ इतने ही के लिए मेरी जरूरत है, मैं और किसी काम का नहीं हूं।" बनवारी गरज उठा, "जाओ, जाओ। मुझे परेशान न करो।"

नीलकण्ठ चला गया लेकिन उसे पीछे से देखकर बनवारी को लगा कि वह हंसता हुआ गया है। बनवारी को लगा, घर के सब नौकर-चाकर इस बेकार और नाचीज आदमी को लेकर आपस में हंसी-मजाक कर रहे हैं। जो आदमी घर का होते हुए भी घर का नहीं होता उसके जैसा किस्मत का मारा और कौन हो सकता है। रास्ते का भिखारी भी नहीं।

बनवारी प्रमाण-पत्रों का बण्डल लेकर बाहर निकला। हालदार परिवार के पड़ोसी और मुकाबले के जमींदार थे प्रतापपुर के बाड़ुज्ये (बनर्जी) जमींदार। बनवारी ने तय किया, इन प्रमाण-पत्र-दस्तावेजों को उनके हाथों में दे दूंगा, धन-सम्पत्ति सब खाक में मिल जाए।

बाहर निकलते समय हरिदास ने ऊपरी मंजिल से अपने बच्चों की मधुर आवाज में पुकारते हुए कहा, "ताऊ जी, तुम बाहर जा रहे हो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।"

बनवारी को लगा, बच्चे के बुरे ग्रह यह बात उससे कहलवा रहे थे। "मैं तो सड़क पर निकल ही पड़ा हूं, इसे भी अपने साथ निकाल ले चलूं। जायगा, जायगा, सब मिट्टी में मिल जाएगा।"

बाहर बगीचे तक पहुंचते ही बनवारी को जोरों का शोर-गुल सुनाई दिया। पास ही हाट से लगी एक विधवा की झोंपड़ी में आग लग गई थी। अपनी पुरानी आदत के मुताबिक यह देखकर बनवारी चुप न रह सका। प्रमाण-पत्रों का अपना बण्डल चम्पा के पेड़ के नीचे रखकर आगे की ओर दौड़ा।

जब लौटकर आया तो देखा, उसका वह कागजों का बण्डल वहां नहीं था। पल-भर में दिल में कांटा-सा चुभा और यह बात मन में आई, नीलकण्ठ से फिर मेरी हार हुई। विधवा का घर जलकर राख हो जाने में क्या नुकसान था? उसे लगा, वह बण्डल दुबारा होशियार नीलकण्ठ के ही हाथ में पहुंच गया।

तूफान की तरह वह एकदम आकर कचहरी के कमरे में हाजिर हो गया। नीलकण्ठ ने तुरन्त बक्स बन्द करके खातिर के साथ उठकर खड़े होकर बनवारी के पांव छुए। बनवारी को लगा, उस बक्स में ही उसने कागज छिपा लिए हैं। बिना कुछ कहे तुरन्त उस बक्स को खोलकर वह उसमें रखे कागज टटोलने लगा। उसमें हिसाब का खाता और उसीसे वास्ता रखने वाले कागज नत्थी थे। बक्स को उलटा करके झाड़ दिया, कुछ भी नहीं मिला।

दबी हुई आवाज में बनवारी ने कहा, "तुम चम्पा के नीचे गए थे?"

नीलकण्ठ बोला, "जी हां, गया क्यों नहीं था? देखा, आप घबराकर दौड़ रहे हैं। बात क्या है, यही जानने के लिए गया था।"

बनवारी—रूमाल में बंधे मेरे कागज तुम्हीं ने लिए हैं?

नीलकण्ठ ने बहुत भले आदमी की तरह कहा, "जी नहीं।"

बनवारी—झूठ बोल रहे हो। तुम्हारा भला नहीं होगा। अभी लौटा दो।

बनवारी ने झूठ-मूठ झूठी डांट-डपट की। उसकी क्या चीज खो गई थी, सो भी वह नहीं बता सका और उस चोरी के माल के बारे में अपना

कोई जोर नहीं था, यह जानकर वह अपने को ही बेवकूफ समझते हुए मन-ही-मन जैसे अपने को ही लानत देने लगा।

कचहरी में इस तरह पागलपन करके वह फिर चम्पा के नीचे ढूंढ़ने लगा। मन-ही-मन माता की शपथ लेकर उसने संकल्प किया कि, जैसे भी हो मैं इन कागजों को हासिल करके ही रहूंगा। किस तरह हासिल करेगा, यह सोचने की उसमें ताकत नहीं थी, केवल बार-बार जमीन पर पैर पटकते हुए बोला, "जरूर करूंगा, हासिल जरूर करूंगा, जरूर करूंगा।"

थककर वह पेड़ के नीचे बैठ गया। कोई नहीं, उसका कोई नहीं था। उसका कुछ नहीं था। अब से खाली हाथ अपनी किस्मत के साथ और दुनिया के साथ उसको जूझना पड़ेगा। उसके लिए इज्जत-प्रतिष्ठा, सज्जनता, प्यार, कुछ भी नहीं रह गया था। केवल मरने और मारने का काम बचा था।

इस तरह मन में छटपटाते हुए बहुत थक जाने के कारण चबूतरे के ऊपर लेटते ही उसे न जाने कब नींद आ गई। जब जागा तो एकाएक समझ नहीं सका वह कहां है। अच्छी तरह जागकर उठकर देखा, उसके सिरहाने हरिदास बैठा था। बनवारी को जगते हुए देखकर हरिदास बोल उठा, "ताऊ, तुम्हारा क्या खो गया था, बताओ तो।"

बनवारी चुप रह गया। हरिदास के इस सवाल का जवाब नहीं दे सका।

हरिदास ने कहा, "अगर मैं ला दूं तो मुझे क्या दोगे ?"

बनवारी को लगा, शायद और कुछ हो। उसने कहा, "मेरे पास जो कुछ है, सब तुझे दे दूंगा।"

यह बात उसने हंसी में कही थी, वह जानता था, उसके पास कुछ नहीं था।

तब हरिदास ने अपने कपड़ों के भीतर से बनवारी के रूमाल में लिपटा कागज का बण्डल निकाला। इस रंगीन रूमाल के ऊपर शेर की तस्वीर बनी थी; वह तस्वीर उसके ताऊ ने उसे कई बार दिखाई थी। इस रूमाल के लिए हरिदास के मन में बहुत लालच था, इसी कारण आग लगने के शोर-गुल में नौकर लोग जब बाहर दौड़ गए थे तभी बगीची में

आकर हरिदास ने चम्पा के नीचे दूर से ही रूमाल को देखकर पहचान लिया था ।

बनवारी ने हरिदास को खींचकर छाती से लगा लिया और चुपचाप बैठा रहा; थोड़ी देर बाद उसकी आंखों से टप-टप करके आंसू टपकने लगे । उसे याद आया, बहुत दिन पहले वह अपने एक नये खरीदे हुए कुत्ते को सजा देने के लिए बार-बार उसे चाबुक मार रहा था । एक बार उसका चाबुक खो गया, कहीं मिलता ही न था । जब वह चाबुक मिलने की उम्मीद छोड़ बैठा, तभी देखा, वही कुत्ता कहीं से चाबुक मुंह में दबाकर मालिक के सामने बड़ी खुशी से पूंछ हिला रहा है । इसके बाद उसने फिर कभी कुत्ते को चाबुक से नहीं मारा ।

झटपट आंखों से आंसू पोंछकर बनवारी ने कहा, "हरिदास, तू क्या चाहता है मुझे बता ।"

हरिदास ने कहा, "ताऊ जी, मैं तुम्हारा वह रूमाल चाहता हूं ।"

बनवारी बोला, "आ हरिदास, तुझे कंधे पर बिठाऊं ।"

हरिदास को कंधे पर चढ़ाकर बनवारी तुरन्त अन्दर गया । सोने के कमरे में जाकर देखा, किरण सारे दिन धूप में सुखाए गए कम्बल को बरामदे में से उठाकर कमरे में जमीन पर बिछा रही थी । बनवारी के कंधे पर हरिदास को बैठे देखकर वह परेशान होकर बोली, "उतार दो, उतार दो । तुम गिरा दोगे उसे ।"

बनवारी ने किरण के चेहरे पर नजर जमाकर कहा, "अब मुझसे मत डरना, मैं नहीं गिराऊंगा ।"

यह कहकर हरिदास को कंधे से उतारकर किरण की ओर बढ़ा दिया । उसके बाद उन कागजों को किरण के हाथ में देकर कहा, "यह हरिदास की धन-सम्पत्ति के प्रमाण-पत्र हैं, ध्यान से रखना ।"

किरण ने चौंककर पूछा, "तुम्हें कहां मिले ?"

बनवारी ने कहा, "मैंने चोरी की थी ।"

उसके बाद हरिदास को छाती से लगाकर कहा, "यह ले बेटा, अपने ताऊ के जिस कीमती धन के बारे में तुझे लालच हुआ है, उसे ले ।"

और यह कहते हुए रूमाल उसके हाथ में दे दिया ।

उसके बाद फिर एक बार अच्छी तरह से किरण की ओर टकटकी लगाकर देखा, दुबली-पतली वह औरत अब दुबली-पतली नहीं रह गई है, कब मोटी हो गई थी, यह उसने गौर नहीं किया था। इस बीच में हालदार परिवार की बड़ी बहू के लायक उसका चेहरा भर गया था। और ज्यादा क्या होगा, अब 'अमरुकशतक' की कविताओं को भी दूसरी सारी दौलत के साथ बहा देना ही बनवारी के लिए अच्छा होगा।

उस रात के बाद बनवारी फिर नहीं दिखाई दिया। वह केवल एक खत लिख गया था कि वह नौकरी ढूंढ़ने बाहर जा रहा है।

पिता के श्राद्ध का भी वह इन्तजार नहीं कर सका। गांव-भर के लोग इस बात पर उसे धिक्कारने लगे।

जीवित और मृत

रानीहाट के जमींदार बाबू शारदा शंकर की विधवा बहू के पिता के कुल में कोई नहीं था; एक-एक करके सब मर गए। पति के कुल में भी सच में अपना कहने लायक कोई नहीं था, पति भी नहीं, संतान भी नहीं। जेठ का एक लडका था, शारदा शंकर का छोटा लड़का। वही उसकी आंखों का तारा था। उसके जन्म के बाद उसकी मां बहुत दिनों तक रोग से पीड़ित रही, इसलिए उसकी विधवा काकी कादम्बिनी ने ही उसका पालन-पोषण किया। पराये लड़के को पालते-पोसते हुए उसके साथ स्नेह का लगाव जैसे और भी ज्यादा हो जाता है, क्योंकि उस पर कोई हक नहीं होता, न उस पर कोई सामाजिक दावा रहता है, बस केवल स्नेह का हक रहता है। लेकिन केवल स्नेह समाज के सामने अपने हक को दलीलों से साबित नहीं कर पाता, और वह करना भी नहीं चाहता, केवल अनिश्चित प्राण-प्यारे को दुगनी बेचैनी से प्यार करने लगता है। विधवा के पूरे लाड़-दुलार से इस बच्चे को सींचकर सावन महीने की एक रात में एकाएक कादम्बिनी मर गई। न जाने कैसे एकाएक उसकी दिल की धड़कन बन्द हो गई। बाकी सारे संसार में वक्त की चाल जारी रही, केवल उस लाड़ों-पले छोटे कोमल पौधे के भीतर वक्त की घड़ी की कल हमेशा के लिए बन्द हो गई।

कहीं पुलिस का उत्पात न हो इस भय से बिना कोई खास दिखावे के जमींदार के चार ब्राह्मण कर्मचारी शव को तुरन्त अन्तिम संस्कार के लिए ले गये।

रानीहाट का श्मशान बस्ती से बहुत दूर था। पोखर के किनारे एक झोंपड़ी थी और उसके पास ही बहुत बड़ा बड़ का पेड़ था, लम्बे-चौड़े मैदान में और कहीं कुछ नहीं था। कभी यहां से होकर नदी बहती थी, इस वक्त नदी बिलकुल सूख गई थी। उसी सूखी जल-धारा के एक हिस्से को खोदकर श्मशान में पोखर खुदवा दिया गया था।

आज के लोग उस पोखर को ही पुण्यतोया नदी का स्वरूप मानते थे।

मृत शव को झोंपड़ी में रखकर चिता के लिए लकड़ी आने के इन्तजार में चारों जने बैठे रहे। वक्त इतना लम्बा मालूम होने लगा कि बेचैन होकर उनमें से निताई और गुरुचरण तो यह देखने के लिए चल दिये कि लकड़ी आने में इतनी देर क्यों हो रही है। और विधु तथा वनमाली शव की रखवाली में बैठे रहे।

सावन की अंधेरी रात थी। घने बादल छाये हुए थे, आसमान में एक भी तारा नहीं दिखता था। अंधेरी झोंपड़ी में दोनों चुपचाप बैठे रहे। एक की चादर में दियासलाई और बत्ती बंधी हुई थी। बरसाती मौसम की दियासलाई बहुत कोशिश करने पर भी नहीं जली—साथ में जो लालटेन थी वह भी बुझ गई।

बहुत देर चुप बैठे रहने के बाद एक ने कहा, "भाई, एक चिलम तम्बाकू का इन्तजाम होता तो बड़ी राहत मिलती। जल्दी-जल्दी में कुछ भी नहीं ला सके।"

दूसरे ने कहा, "मैं झट से लपककर सब कुछ इकट्ठा करके ला सकता हूं।"

वनमाली के भागने के इरादे को ताड़ विधु ने कहा, "मैया री! और मैं क्या यहां अकेला बैठा रहूंगा?"

फिर बातचीत बंद हो गई। पांच मिनट एक घण्टे के बराबर लगने लगे। जो लोग लकड़ी लेने गये थे उनको ये लोग मन-ही-मन गालियां देने लगे, "वे कहीं खूब आराम से बैठे बातें करते हुए तम्बाकू पी रहे होंगे।"

धीरे-धीरे यह शक उनके मन में जड़ जमाने लगा।

कहीं कोई आहट नहीं, पोखर के किनारे से झिल्लियों और मेंढकों का निरन्तर शोर सुनाई पड़ रहा था। इतने में लगा जैसे खाट कुछ हिली, जैसे शव ने करवट बदली।

विधु और वनमाली राम नाम जपते-जपते कांपने लगे। एकाएक झोंपड़ी में लम्बी सांस लेने की आवाज सुनाई पड़ी। विधु और वनमाली पलक झपकते झोंपड़ी से झपटकर बाहर निकले और गांव की ओर दौड़े।

लगभग डेढ़ कोस का रास्ता पार करने पर उन्होंने देखा, उनके बाकी दो साथी हाथ में लालटेन लिए चले आ रहे हैं। वे असल में तम्बाकू पीने ही गए थे। लकड़ी का उन्हें कोई पता नहीं था, तो भी उन्होंने खबर दी कि पेड़ काटकर लकड़ी चीरी जा रही है; जल्दी ही पहुंच जायेगी। तब विधु और बनमाली ने झोंपड़ी की सारी घटना कह सुनाई। निताई और गुरुचरण ने विश्वास न करते हुए उसे उड़ा दिया, और जिम्मेदारी से हटकर भाग आने के लिए उन दोनों पर बहुत गुस्सा हुए और डांट-डपट करने लगे।

जल्दी ही चारों उस झोंपड़ी में आ इकट्ठे हुए। भीतर घुसकर देखा, लाश वहां नहीं है, खाट खाली पड़ी है।

वे आपस में एक-दूसरे का मुंह देखते रह गये। शायद सियार ले गए हों? किन्तु ऊपर से ढकने वाला कपड़ा तक नहीं था। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते बाहर जाकर देखा, झोंपड़ी के दरवाजे के पास थोड़ी कीचड़ जमी थी, उस पर किसी औरत के छोटे पैरों के चलने के ताजे निशान थे।

शारदा शंकर सामान्य आदमी नहीं थे, उनसे भूत की यह कहानी कहने पर एकाएक कोई शुभ फल मिल जाएगा, ऐसी उम्मीद नहीं थी। इसलिए चारों आदमियों ने अच्छी तरह सलाह करके तय किया कि यही खबर देना ठीक होगा कि दाह-संस्कार पूरा कर दिया है।

सुबह में जो लोग लकड़ी लेकर आये उन्हें खबर मिली कि देर होती देखकर पहले ही काम पूरा कर दिया गया, झोंपड़ी में लकड़ी मौजूद थी। इस बारे में किसी को भी साधारणतः शक नहीं हो सकता क्योंकि लाश ऐसी कोई कीमती दौलत नहीं है, जिसे धोखा देकर कोई चुरा ले जायेगा।

2

सभी जानते हैं, जिन्दगी का जब कोई लक्षण नहीं रह जाता है तब भी कई बार जिन्दगी छिपे तौर पर बनी रहती है, और वक्त के मुताबिक फिर मरे समान देह में उसका कार्य व्यापार शुरू होता है। कादम्बिनी भी मरी नहीं थी, एकाएक न जाने किस वजह से उसकी जिन्दगी की हरकत बन्द हो गई थी।

जब उसकी चेतना लौटी तो देखा, चारों ओर घना अंधेरा था। हमेशा की आदत के मुताबिक जहां सोती थी उसे लगा यह वह जगह नहीं है। एक बार पुकारा, "दीदी।" अंधेरी झोंपड़ी में किसी ने जवाब नहीं दिया। डरकर वह उठ बैठी, उसे उस बिस्तर की बात याद आई—एकाएक छाती में उठा दर्द, सांस रुकने की बात। उसकी बड़ी जिठानी कोठरी के कोने में बैठी चूल्हे पर बच्चे के लिए दूध गरम कर रही थी। कदाम्बिनी खड़ी न रह सकी और पछाड़ खाकर बिस्तर पर गिर पड़ी। रुंधे गले से पुकारा, "दीदी, एक बार बच्चे को ले आओ, मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है।"

उसके बाद सब कुछ काला पड़ गया। जैसे किसी किताब पर दवात की पूरी स्याही उलट गई हो। कादम्बिनी की सारी याददाश्त और चेतना, दुनियारूपी किताब के सारे अक्षर पल-भर में सब कुछ एक में गडमड हो गये। बच्चे ने उसको आखिरी बार अपने उस प्यार-भरे मोटे स्वर में 'काकी' कहकर बुलाया था या नहीं, उसकी अनन्त-अनजान आखिरी सफर में रास्ते के लिए जानी-पहचानी धरती से उसका स्नेह यह आखिरी सहारा इकट्ठा करके लाया था या नहीं, विधवा को यह भी याद नहीं आ रहा था।

पहले तो लगा, यमलोक शायद इसी तरह एकदम वीरान और सदा अन्धकारमय है। वहां कुछ भी न देखने को है, न सुनने को और न काम करने को। बस, हमेशा इसी तरह जागते हुए बैठे रहना पड़ेगा।

उसके बाद जब खुले दरवाजे से एकाएक बरसाती ठण्डी हवा का

झोंका आया और बरसाती मेंढकों की पुकार कानों में पड़ी, तब पल-भर में इस तुच्छ जीवन की बचपन से लेकर आज तक की सारी बारिशों की यादें एक साथ उसके मन में उतरने लगीं और वह धरती की नजदीकी का अनुभव कर सकी। एक बार बिजली चमकी; सामने के पोखर, बड़ का पेड़, लम्बा-चौड़ा मैदान और दूर की पेड़ों की कतारों पर अचानक उसकी नजर पड़ी। उसे याद आया कि तीज-त्यौहारों के अवसर पर बीच-बीच में आकर वह इस पोखर में नहाई थी और यह भी याद आया कि तब कभी श्मशान में किसी लाश को देखकर मृत्यु कैसी डरावनी लगती थी।

पहले तो मन में आया कि घर लौटना चाहिये, लेकिन साथ ही सोचा, 'मैं तो जिन्दा नहीं हूं, मुझे वे घर में क्यों घुसने देंगे। वहां तो ऐसा कुछ अशुभ माना जाएगा। जिन्दा लोगों की दुनिया से मैं बाहर निकाल दी गई हूं। मैं अपनी ही प्रेतात्मा हूं।'

यदि यह सही नहीं है तो इस आधी रात मैं शारदा शंकर के आंगन से इस डरावने श्मशान में आई कैसे? यदि उसका दाह-संस्कार अभी खत्म नहीं हुआ था तो जलाने वाले आदमी गये कहां? शारदा शंकर के जगमगाते घर में अपने मरने के आखिरी पल उसे याद आए और उसके बाद ही इस दूर-दराज पर बने इस वीरान अंधेरे श्मशान में अपने को अकेली देखकर उसने अनुभव किया, 'मैं इस धरती के लोगों की अब कोई नहीं—मैं भयंकर, अशुभकारी अपनी ही प्रेतात्मा हूं।'

मन में यह बात आते ही लगा जैसे उसके चारों ओर से सारे सांसारिक बंधन टूट गये हैं। जैसे उसमें अजीब शक्ति हो, उसे मुक्त आजादी हासिल हो—वह जहां चाहे जा सकती है, जो चाहे कर सकती है। इस नये विचार के मन में आने से वह पागल की तरह प्रचण्ड वायु के झोंके की तरह झोंपड़ी से बाहर निकलकर अंधेरे श्मशान को रौंदती हुई चल पड़ी। मन में लाज, डर, चिन्ता रत्ती-भर न रही।

चलते-चलते पैर थकने लग गये, देह बेदम लगने लगी; एक मैदान पार करते न करते दूसरा आ जाता था। बीच-बीच में धान के खेत पार करने पड़ते या फिर कहीं-कहीं घुटनों तक पानी मिलता। जब सुबह का उजाला कुछ-कुछ दिखाई देने लगा तब जाकर थोड़ी दूर पर बस्ती के बांस

के झाड़ों से एक-दो चिड़ियों की चहचहाहट सुनाई दी ।

तब न जाने उसे कैसा डर लगने लगा । दुनिया और जीते-जागते लोगों के साथ इस वक्त उसका कैसा नया सम्पर्क बन गया था, वह एकदम ही नहीं जानती थी । जब तक मैदान में थी, श्मशान में थी, सावन की रातों के अंधेरे में थी, तब तक वह जैसे निडर थी, जैसे अपने राज्य में थी । दिन के उजाले में लोगों की बस्ती उसे बहुत ही डरावनी जगह लगने लगी थी । आदमी भूत से डरता है, भूत भी आदमी से डरता है; मौत की नदी के अलग-अलग किनारे पर उनका वास है ।

3

कपड़ों में कीचड़ लपेटे अजीब-से भावों में डूबी और रात-भर जगने की वजह से पागल के समान कादम्बिनी के चेहरे की जो हालत हो गई थी उसे देखकर यह मुमकिन था कि लोग डर जाते और लड़के शायद दूर भागकर उस पर ढेले फेंकने लगते । किस्मत से उसे सबसे पहले इस हालत में एक शरीफ राही ने देखा ।

उसने नजदीक आकर कहा, "बेटी, तुम भले घर की बहू लगती हो, तुम भला इस हालत में अकेली कहां जा रही हो ?"

पहले तो कादम्बिनी कोई जवाब न देकर ताकती रह गई । एकाएक कुछ भी नहीं सोच पायी । वह दुनिया में है, वह भले घर की बहू जैसी दिखती है, गांव के रास्ते में राही उससे सवाल पूछ रहा है, वे सारी बातें उसे कल्पना से परे लगीं ।

राही ने उससे फिर कहा, "चलो बेटी, मैं तुम्हें घर पहुंचा दूं । तुम्हारा घर कहां है, मुझे बताओ ।"

कादम्बिनी सोचने लगी, ससुराल लौटने की बात तो मन में ला भी नहीं सकती थी, पिता का घर था ही नहीं—तभी उसे बचपन की सहेली याद आ गई ।

वैसे तो सहेली योगमाया का साथ बचपन में ही छूट गया था फिर भी कभी-कभी चिट्ठी-पत्री आती-जाती रहती थी । कभी-कभी बाकायदा प्यार की तकरार उठ खड़ी होती । कादम्बिनी जताना चाहती थी कि

उसीका स्नेह बढ़-चढ़कर है; योगमाया जताना चाहती थी कि कादम्बिनी उसके प्यार का उचित बदला नहीं देती। यदि किसी सुयोग से वे एक बार मिल सकें तो फिर वे पल-भर के लिए भी एक-दूसरे को आंख की ओट नहीं करेंगी, इस बारे में उन दोनों में से किसी को कोई शक नहीं था।

कादम्बिनी ने उन सज्जन से कहा, "निशिन्दापुर में श्रीपतिचरण बाबू के घर जाना है।" राही कलकत्ता जा रहे थे। निशिन्दापुर नजदीक नहीं था, लेकिन उनके रास्ते में पड़ता था। उन्होंने अपने हाथों बन्दोबस्त करके कादम्बिनी को श्रीपतिचरण बाबू के घर पहुंचा दिया।

दोनों सखियों का मिलन हुआ। पहले पहचानने में कुछ देर हुई, फिर दोनों की आंखों के सामने बचपन का चित्र धीरे-धीरे साफ हो उठा।

योगमाया ने कहा, "वाह-वाह, मेरी किस्मत कितनी अच्छी है! फिर से तुम्हें देख सकूंगी, इसकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी, लेकिन बहन, तुम आईं कैसे? तुम्हारी ससुराल के लोगों ने क्या तुम्हें छोड़ दिया?"

कादम्बिनी चुप रह गयी। आखिर में बोली, "बहन, ससुराल की बात मुझसे मत करो। मुझे नौकरानी की तरह घर के कोने में जगह दे दो, मैं तुम लोगों का काम-काज कर दिया करूंगी।"

योगमाया बोली, "वाह री, यह खूब कही; नौकरानी की तरह क्यों रहोगी? तुम मेरी सहेली हो, तुम मेरी···" आदि।

तभी श्रीपति कमरे में दाखिल हुए। कादम्बिनी कुछ देर उनके मुंह की ओर ताकती रही, फिर धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गयी। सिर पर पल्ला ठीक कर लेने का, या किसी तरह की झिझक या संकोच करने की कोई बात नहीं दिखाई पड़ी।

बाद में श्रीपति कहीं उसकी सहेली के खिलाफ सोच न बैठें, इसी डर से परेशान होकर योगमाया ने अनेक तरह से उनको समझाना शुरू किया लेकिन इतना कम समझाना पड़ा और श्रीपति ने योगमाया के सारे विचारों को इतनी आसानी से मान लिया कि योगमाया को मन-ही-मन खास तसल्ली न हो सकी।

कादम्बिनी सहेली के घर आ तो गयी, पर सहेली के साथ हिल-मिल

नहीं सकी । बीच में मृत्यु वाला प्रसंग दीवार बनकर खड़ा था । अपने बारे में लगातार कोई शक और सतर्कता बनी रहने पर दूसरे के साथ घुला-मिला नहीं जा सकता था । कादम्बिनी योगमाया के मुंह की ओर देखती और न जाने क्या सोचती । सोचती अपने पति और अपनी घर गृहस्थी लिए वह जैसे बहुत दूर किसी दूसरी दुनिया में हो । स्नेह-ममता और सारी जिम्मेदारी लिए हुए वह जैसे धरती की वासी हो, और मैं जैसे कोई खाली छाया । वह जैसे वजूद वाले देश में हो, और मैं जैसे किसी अनन्त में ।

योगमाया को भी न जाने कैसा-कैसा लगा, कुछ भी नहीं समझ पाई । स्त्री की जाति भेद की बात नहीं बर्दाश्त कर सकती; क्योंकि अनिश्चित को लेकर कविता की जा सकती है, बहादुरी दिखायी जा सकती है, पाण्डित्य दिखाया जा सकता है, लेकिन घर-गृहस्थी नहीं चलाई जा सकती । इसी कारण स्त्री जाति जिसको समझ नहीं सकती, या तो वह उसके वजूद को नजरंदाज करके उसके हाथ कोई लेन-देन ही नहीं रखती या फिर उसको अपने हाथ से नया रूप देकर उसे अपने लेन-देन के योग्य वस्तु गढ़ लेती है । यदि दोनों में से एक भी नहीं कर पाती, तो फिर उस के ऊपर वह भयंकर गुस्सा करती रहती है ।

कादम्बिनी जितनी ही पहचान में कम आती गयी योगमाया उसके ऊपर उतना ही गुस्सा करने लगी । उसने सोचा, 'सिर पर यह क्या मुसीबत आ पड़ी !'

फिर एक और भी आफत थी । कादम्बिनी खुद अपने से डरती थी । वह अपनी निकटता से खुद किसी तरह भी भाग नहीं पाती थी । जो भूत से डरते हैं उन्हें अपने पीछे का डर सताया करता है, जहां नजर नहीं जा पाती वहीं का डर लगता है । लेकिन कादम्बिनी को अपने से ही सबसे अधिक डर लगता था, बाहर का उसे कोई डर नहीं था ।

इसलिए सुनसान दोपहरी वह कभी-कभी कमरे में अकेली चीख उठती और शाम के साथ दीये के उजाले में अपनी छाया देखकर उसका शरीर थर-थर कांपने लग जाता ।

उसका यह डर देखकर घर के सभी लोगों के मन में न जाने कैसा

एक भय समा गया। नौकर-चाकर, यहां तक कि योगमाया को भी जब-तब, जहां-तहां भूत दिखाई पड़ने लगा।

एक दिन ऐसा हुआ कि आधी रात को एकाएक कादम्बिनी रोती हुई सोने के कमरे से बाहर निकली और योगमाया के कमरे के दरवाजे पर आकर बोली, "दीदी, दीदी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। मुझे अकेली मत छोड़ा करो।"

योगमाया को जहां एक तरफ डर लगा, तो दूसरी तरफ गुस्सा भी आया। इच्छा हुई कि कादम्बिनी को उसी वक्त निकाल दे। श्रीपति ने दया दिखाते हुए जैसे-तैसे उसको शांत करके पास के कमरे में बिठा लिया।

दूसरे दिन बेवक्त श्रीपति को अन्दर बुलाया गया। योगमाया ने उनको अचानक डांटना-फटकारना शुरू किया, "क्यों जी, तुम कैसे आदमी हो। एक औरत अपनी ससुराल छोड़कर तुम्हारे घर आकर बैठ गई है, महीना होने को आया, फिर भी टलने का नाम नहीं लेती और तुम्हारे मुंह से इस सब के खिलाफ एक शब्द भी नहीं सुनाई पड़ा। तुम्हारे मन में क्या है साफ-साफ कहो न ! मर्दों की तो जात ही ऐसी होती है।"

असल में आमतौर पर स्त्री जाति के लिए मर्दों का एक बेसोचे-समझे पक्षपात रहता है और इसके लिए स्त्रियां ही उनको अधिक दोषी ठहराती हैं। बेसहारा लेकिन सुन्दर कादम्बिनी के प्रति उनकी हमदर्दी उचित से कुछ ज्यादा थी, इस बात के विरोध में श्रीपति योगमाया की देह छूकर कसम खाने को भी तैयार थे फिर भी, उनके बर्ताव में इसका सबूत मिल ही जाता।

वे सोचते, 'इसकी ससुराल के लोग जरूर इस निस्सन्तान विधवा के साथ जोर-जुल्म करते होंगे, तभी तो किसी भी तरह सहन न कर सकने पर वहां से भागकर कादम्बिनी ने मेरा सहारा लिया है। जब इसके मां या बाप कोई है ही नहीं, तब इसे मैं कैसे जाने दूं?' इसी वजह से वे किसी तरह की खोज-खबर लेने से उदासीन थे और इस कड़वे विषय पर सवाल करके कादम्बिनी को दुखी करने की भी उनकी इच्छा नहीं होती थी।

हारकर उनकी पत्नी उनकी निष्क्रिय कर्तव्य-बुद्धि पर तरह-तरह से

चोट करने लगी। कादम्बिनी की ससुराल में समाचार भिजवाना उनके घर की शांति के लिए बहुत जरूरी है, यह वे भली भांति जान गये। आखिर उन्होंने तय किया—अचानक चिट्ठी लिख भेजने का नतीजा शायद अच्छा न भी हो, इसलिए स्वयं रानीहाट जाकर पता लगाने के बाद अपनी जिम्मेदारी तय करेंगे।

श्रीपति तो चले गये, इधर योगमाया ने आकर कादम्बिनी से कहा, "बहन, तुम्हारा यहां पर अब और टिके रहना अच्छा नहीं लगता। लोग क्या कहेंगे?"

गम्भीरता से योगमाया के मुंह की ओर देखते हुए कादम्बिनी बोली, "लोगों से मुझे क्या लेना-देना है?"

योगमाया सुनकर हक्की-बक्की रह गई। जरा झल्लाकर बोली, "तुम्हें न हो, हमें तो लेना-देना है। हम पराये घर की बहू को क्या कहकर टिकाये रहें?"

कादम्बिनी ने कहा, "मेरी ससुराल है ही कहां?"

योगमाया ने सोचा, 'मर गये, न जाने क्या कहती है, कलमुंही।'

कादम्बिनी धीरे-धीरे बोली, "मैं क्या कोई तुम लोगों की हूं? मैं क्या इस दुनिया की हूं, तुम लोग हंसते हो, रोते हो, प्यार करते हो, सब अपने में मगन हो, मैं···तो बस देखती रहती हूं। तुम लोग आदमी हो, और मैं छाया हूं। समझ नहीं आता भगवान् ने मुझे तुम लोगों की इस दुनिया में क्यों ला रखा है। तुम लोगों को भी डर लगा रहता है कि कहीं मैं तुम लोगों के हंसी-खेल में कुछ अशुभ न कर दूं—और मैं भी नहीं समझ पाती कि तुम लोगों के साथ मेरा क्या रिश्ता है। लेकिन ईश्वर ने जब हमारे लिए कोई दूसरी जगह बनाई ही नहीं तब चाहे बात-बात में बन्धन टूटता रहे, फिर भी तुम ही लोगों के आसपास चक्कर काटती रहती हूं।"

उसने ये बातें कुछ इस ढंग से देखते हुए कहीं कि योगमाया जैसे-तैसे मोटे तौर पर कुछ तो समझ पाई लेकिन असल बात वह नहीं समझी, जवाब भी नहीं दे सकी, दुबारा प्रश्न भी नहीं कर सकी। वह बहुत बोझिल मन से गम्भीर भाव से चली गई।

4

रात के लगभग दस बज रहे थे तो श्रीपति रानी हाट होकर लौटे। मूसलाधार बारिश में धरती डूबी जा रही थी। उसकी निरन्तर झर-झर के शोर से ऐसा लगा था कि यह वर्षा खतम नहीं होगी, आज रात-भर चलती रहेगी।

योगमाया ने पूछा, "क्या हुआ ?"

श्रीपति ने कहा, "ढेरों बातें हैं, फिर करेंगे।" कहकर उन्होंने कपड़ें बदलकर भोजन किया और हुक्का पीकर सोने चले गए। बेहद चिन्तित दिखाई दे रहे थे।

योगमाया बहुत देर से अपनी उत्सुकता दबाये हुए थी। बिस्तर पर पहुंचते ही उसने पूछा, "क्या सुन आए, बताओ।"

श्रीपति ने कहा, "तुमने जरूर एक गलती की है।"

सुनकर योगमाया मन ही मन कुछ नाराज हुई। औरतें कभी गलती नहीं करतीं; यदि करें भी तो किसी होशियार आदमी के लिए उसका जिक्र करना ठीक नहीं है। उसे अपने सिर पर ले लेना ही होशियारी है।

योगमाया ने थोड़ा गर्म होकर कहा, "कैसी, सुनूं तो।"

श्रीपति ने कहा, "तुमने जिस औरत को अपने घर में जगह दी है, वह तुम्हारी सहेली कादम्बिनी नहीं है।"

इस तरह की बातें सुनकर सहज ही गुस्सा आ सकता है, खास तौर से अपने पति के मुंह से सुनकर तो कहने की बात ही क्या। योगमाया ने कहा, "अपनी सहेली को मैं नहीं पहचानती, तुमसे पहचान करानी होगी— खूब कही।"

श्रीपति ने समझाया, "यहां बात की खूबी को लेकर किसी तरह की बहस नहीं चल रही है, सबूत देखना होगा। योगमाया की सहेली कादिम्बनी मर गई है इसमें कोई शक नहीं।"

योगमाया ने कहा, "लो, और सुनो ! तुम जरूर कोई न कोई गड़बड़ कर आए हो। न जाने कहां के कहां पहुंच गए और क्या-का-क्या सुन आए। भला कोई बात है। तुम्हें खुद वहां जाने के लिए किसने कहा था, एक

खत लिख देते, बात साफ हो जाती ।"

अपनी कार्यकुशलता को लेकर औरत के ऐसे विश्वास की कमी से श्रीपति बहुत उदास होकर सब सबूतों के बारे में बताने लगे, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। दोनों ओर से हां-ना करते-करते आधी रात हो गई।

वैसे तो कादम्बिनी को तभी घर से बाहर निकाल देने के बारे में पति-पत्नी में दो राय नहीं थीं, क्योंकि श्रीपति का मानना था कि उनके मेहमान ने झूठा परिचय देकर उनकी घरवाली को इतने दिन तक धोखा दिया है, और योगमाया का मानना था कि वह कुल-त्यागिनी है, फिर भी उठे हुए विवाद को लेकर दोनों में से कोई भी हार मानने को तैयार न था।

धीरे-धीरे दोनों की आवाज बढ़ने लगी। वे भूल गए कि बगल के कमरे में ही कादम्बिनी सो रही है।

एक ने कहा, "अच्छी आफत में पड़ गए। मैं अपने कानों से सुन आया हूं।"

दूसरे ने सख्त आवाज में कहा, "तो क्या तुम्हारे कहने से मान लूं, मैं अपनी आंखों से देख रही हूं।"

आखिर में योगमाया ने पूछा, "कादम्बिनी कब मरी थी बताओ तो।"

उसने सोचा कि कादम्बिनी के किसी खत की तारीख से इस बात का सबूत दिखलाकर श्रीपति की भूल साबित कर देगी।

श्रीपति ने जिस तारीख की बात कही, दोनों ने हिसाब करके देखा कि वह तारीख जिस दिन शाम को कादम्बिनी उनके घर आई थी, ठीक उसके पहले दिन पड़ती थी। सुनते ही योगमाया का दिल अचानक कांप उठा, श्रीपति को भी न जाने कैसा लगने लगा।

तभी उनके कमरे का दरवाजा खुल गया, चौमासे की हवा के झोंके से दीया भक् से बुझ गया। पलक झपकते ही बाहर का अंधेरा सारे कमरे में ऊपर-नीचे तक भर गया। कादम्बिनी एकाएक कमरे के भीतर आ खड़ी हुई। उस समय ढाई पहर रात बीत चुकी थी। बाहर बराबर बारिश हो रही थी।

कादम्बिनी ने कहा, "बहन, मैं तुम्हारी वही कादम्बिनी हूं, लेकिन अब मैं जिन्दा नहीं हूं, मैं मर चुकी हूं।"

योगमाया डर के मारे चीख पड़ी। श्रीपति की बोलती बन्द हो गई।

"लेकिन मैंने मरने के अलावा तुम लोगों की नजरों में और क्या कसूर किया है? मेरे लिए अगर न इस लोक में स्थान है, न परलोक में—हाय ! तो फिर मैं कहां जाऊं !"

जोर से चीखकर वह जैसे उस भयानक बारिश वाली रात में सोते हुए ईश्वर को जगाकर पूछ उठी, "हाय ! तो फिर मैं कहां जाऊं ?"

यह कहकर बेहोश पति-पत्नी को अंधेरे कमरे में छोड़कर कादम्बिनी दुनिया में अपनी जगह ढूंढ़ने निकल पड़ी।

5

कादम्बिनी किस तरह लौटकर रानीहाट पहुंची, यह कहना मुश्किल है, लेकिन पहले किसी को भी दिखाई नहीं पड़ी। उसने पूरा दिन निराहार रहकर एक टूटे मन्दिर के खंडहर में बिता दिया।

बरसात के मौसम की गहरी अंधेरी शाम वक्त से पहले उतर आई। कहीं कुछ बुरा घटित होने के डर से जैसे गांव के लोगों ने घबराकर अपने-अपने घरों में घुस गए, तब कदाम्बिनी बाहर निकली। ससुराल के दरवाजे पर पहुंचकर एक तो उसका दिल कांप उठा, लेकिन जब वह लम्बा घूंघट निकालकर अन्दर जाने लगी तो उसको नौकरानी समझकर दरबानों ने कोई रोक-टोक नहीं की। तभी बारिश का जोर बढ़ गया और हवा भी तेज हो गई।

उस वक्त घर की मालकिन शारदा शंकर की पत्नी अपनी विधवा ननद के साथ ताश खेल रही थीं। नौकरानी रसोईघर में थी और बीमार मुन्ना बुखार उतर जाने के बाद सोने वाले कमरे में बिस्तर पर सो रहा था। कादम्बिनी सबकी आंख बचाकर उसी कमरे में घुस गई। पता नहीं क्या सोचकर ससुराल आई थी; वह खुद भी नहीं जानती थी। बस, इतना जानती थी कि एक बार आकर मुन्ने को एक नजर देख लेने की मन में चाह थी। उसके बाद कहां जाएगी, क्या होगा, यह तो उसने

सोचा भी नहीं था।

दिन के उजाले में उसने देखा, कमजोर, बीमार मुन्ना मुट्ठी बंद किये सोया पड़ा है। देखते ही उसका उतावला दिल बेचैन हो उठा। उसकी सारी बलाएं लेकर उसको एक बार छाती से लगाये बिना क्या रहा जा सकता है! फिर उसे याद आया, 'मैं रही नहीं, अब इसको देखने वाला कौन है? इसकी मां को मिलना-जुलना अच्छा लगता है, गपशप अच्छी लगती है, खेल-तमाशा अच्छा लगता है, इतने दिन तक इसका बोझ मुझे सौंपकर वे बेफिक्र थीं, लड़के के पालने-पोसने का कोई झंझट उन्हें नहीं सम्भालना पड़ा। आज इसकी उस तरह देख-भाल कौन करेगा?'

तभी मुन्ना एकाएक करवट बदलकर अर्धनिंदिया में बोल पड़ा, "काकी, पानी दो।" 'हाय! मैं वारी जाऊं। मेरे लाल, अपनी काकी को तू अब भी नहीं भूला।' झटपट सुराही से पानी लेकर मुन्ने को छाती से चिपटाकर कादम्बिनी ने उसको पानी पिलाया।

जब तक नींद के झोंके में रहा, अपनी आदत के मुताबिक काकी के हाथ से पानी पीने में मुन्ने को कोई खास बात नहीं लगी। बाद में कादम्बिनी ने जब अपनी बहुत दिनों की इच्छा पूरी करने के लिए उसका मुंह चूमकर उसे लिटा दिया तो उसकी नींद खुल गई और उसने काकी से लिपटकर पूछा, "काकी, तू मर गई थी?"

काकी बोली, "हां, बेटा।"

"तू फिर मुन्ने के पास लौट आई है? अब तो नहीं मरेगी?"

उसका जवाब देने से पहले ही हल्ला मच गया। नौकरानी कटोरी में साबूदाना लिए कमरे में घुसी थी, अचानक कटोरी फेंककर 'मैया री!' चीखती हुई वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

उसकी चीख सुनकर मालकिन ताश फेंककर दौड़ी आईं, कमरे में घुसते ही जैसे उन्हें काठ मार गया, न तो भाग ही सकीं, न मुंह से एक भी बात निकली।

ये सब बातें देखकर मुन्ने के मन में भी डर पैदा हो गया। वह रोते-रोते बोला, "काकी, तू जा।"

बहुत दिनों बाद आज कादम्बिनी को महसूस हुआ कि वह मरी नहीं

है—वही पुराना घर-द्वार, वही सब कुछ, वही मुन्ना, वही प्यार और लाड़ उसके लिए वैसी की वैसी जिन्दा है, बीच में कोई भी दुराव, कोई फर्क नहीं आया। सहेली के घर जाकर उसे लगा था कि बचपन की सखी मर चुकी है, लेकिन मुन्ने के कमरे में आकर उसने महसूस किया कि मुन्ने की काकी जरा भी नहीं मरी है।

उसने बेचैन होकर कहा, "दीदी, मुझे देखकर तुम लोग क्यों डर रही हो, यह देखो, मैं तो आज भी उसी तरह तुम्हारी हूं।"

मालकिन ज्यादा देर खड़ी नहीं रह सकीं, बेहोश होकर गिर पड़ीं। बहन से खबर पाकर शारदा शंकर बाबू खुद अन्तःपुर में आये, खड़े हुए, हाथ जोड़कर उन्होंने कादम्बिनी से कहा, "छोटी बहू, यह क्या तुम्हारे लिए ठीक है? सतीश मेरे कुल का इकलौता लड़का है, इसको तुम नजर क्यों लगा रही हो? हम क्या कोई पराये हैं? तुम्हारे जाने के बाद से वह दिनों-दिन सूखता जा रहा है, बीमारी छोड़ने का नाम नहीं लेती, बस रात-दिन 'काकी-काकी' की रट लगाए रहता है। तुमने जब दुनिया छोड़ दी है तो अब यह माया-मोह भी तोड़ डालो—हम तुम्हारा ठीक ढंग से संस्कार करेंगे।"

कादम्बिनी अब और अधिक न सह सकी, जोर से बोल उठी, "अरे, मैं मरी नहीं हूं, मरी नहीं हूं। मैं तुम लोगों को कैसे समझाऊं, मैं मरी नहीं हूं। यह देखो, मैं जिन्दा हूं।"

यह कहकर वह धरती पर पड़ी कांसे की कटोरी उठकर सिर पर मारने लगी। सिर फूटकर खून बहने लगा।

फिर वह बोली, "यह देखो, मैं जिन्दा हूं।"

शारदा शंकर मूर्ति की तरह खड़े रहे; मुन्ना डर के मारे पिता को बुलाने लगा, दोनों बेहोश औरतें जमीन पर पड़ी रहीं।

तब कादम्बिनी, "अरे! मैं मरी नहीं हूं रे, नहीं मरी रे, नहीं मरी।" चीखती हुई कमरे से बाहर निकलकर सीढ़ियों से उतरती हुई आंगन के तालाब में कूद पड़ी। ऊपर के कमरे से शारदा शंकर ने छपाक की आवाज सुनी।

रात-भर बारिश होती रही। अगले दिन सवेरे भी बारिश हो रही थी, दोपहर को भी बारिश रुकने के कोई आसार दिखाई नहीं दिए। कादम्बिनी ने मरकर साबित किया कि वह मरी नहीं थी।

अपरिचित

आज मेरी उम्र केवल सत्ताईस साल की है। यह जिन्दगी न लम्बाई के हिसाब से बड़ी है न गुण के हिसाब से। तो भी इसकी एक खास कीमत है। यह उस फूल जैसी है जिसकी छाती पर भौंरा आ बैठा हो और उस आ बैठने की कहानी ने उसकी जिन्दगी के फल में गुठली का-सा रूप अख्तियार कर लिया हो।

वह कहानी आकार में छोटी है, उसे छोटी करके ही लिखूंगा। जो छोटे को मामूली समझने की भूल नहीं करेंगे वे इसका रस समझेंगे।

कालेज में पास करने के लिए जितने इम्तिहान थे सब मैंने दे लिए हैं। बचपन में मेरे खूबसूरत चेहरे को लेकर पण्डित जी को सेमल के फूल तथा माकाल फल[1] के साथ मेरा मुकाबला करके हंसी उड़ाने का मौका मिला था, तब मुझे उससे बड़ी शर्म लगती थी; लेकिन बड़े होने पर सोचता रहा हूं कि यदि दोबारा जन्म मिले तो मेरे मुंह पर सुन्दरता और पंडित जी के मुंह पर व्यंग्य इसी तरह दिखे। एक दिन था जब मेरे पिता गरीब थे। वकालत करके उन्होंने बहुत-सा रुपया कमाया, भोग करने को उन्हें पल-भर भी वक्त नहीं मिला। मरते वक्त उन्होंने जो लम्बी सांस ली थी

1. बाहर से देखने में सुन्दर लेकिन अन्दर से बदबूदार; खाने के लिए वर्जित एक गूदेदार फल।

फुरसत में होने का उनका वही पहला मौका था ।

उस वक्त मेरी उम्र कम थी । मां के हाथों ही मेरा लालन-पालन हुआ । मां गरीब घर की बेटी थी; हम अमीर थे । यह बात न तो वे भूलतीं, और न मुझे भूलने देतीं । बचपन में मैं हमेशा गोद में ही रहा, शायद इसीलिए मैं आखिर तक पूरे तौर पर बालिग ही नहीं हुआ । आज भी मुझे देखने पर लगेगा जैसे मैं अन्नपूर्णा की गोद में गणेश का छोटा भाई होऊं ।

मेरे असली लालन-पालन करने वाले थे मेरे मामा । वे मुझसे मुश्किल से छः साल बड़े होंगे । लेकिन फल्गू की रेत की तरह उन्होंने हमारे सारे परिवार को अपने दिल में सोख लिया था । उन्हें खोदे बिना इस परिवार का एक भी बूंद रस पाने का कोई चारा नहीं । इसी कारण मुझे किसी भी चीज के लिए कोई फिक्र नहीं करनी पड़ती ।

हर लड़की के पिता कबूल करेंगे कि मैं सज्जन हूं । हुक्का तक नहीं पीता । भला आदमी होने में कोई झंझट नहीं है, इसीलिए मैं बिलकुल भला मानस हूं । मां का कहना मानकर चलने की योग्यता मुझमें है; असल में न मानने की हिम्मत मुझमें नहीं है । मैं अपने को अन्दर ड्योढ़ी के शासन के मुताबिक चलने के लायक ही बना सका हूं, अगर कोई युवती विवाह के लिए मुझे चुनने की स्थिति में हो तो मेरी इन खूबियों को याद रखें ।

बड़े-बड़े घरों से मेरे ब्याह के प्रस्ताव आए थे । लेकिन मेरे मामा का, जो धरती पर मेरे भाग्य देवता के सबसे बड़े 'एजेण्ट' थे, ब्याह के बारे में एक खास राय थी । अमीर की लड़की उन्हें पसन्द नहीं थी । वे यही चाहते थे कि हमारे घर जो लड़की आये वह सिर झुकाए हुए आए । फिर भी रुपये को लेकर उनकी नस-नस में लगाव समाया हुआ था । वे ऐसा समधी चाहते थे जिसके पास धन तो न हो, लेकिन जितना हो उसे देने में हिचक न दिखाए । जिनका शोषण तो कर लिया जाए, लेकिन जिसे घर आने पर गुड़गुड़ी के बदले बंधे हुक्के में[1] तम्बाकू देने पर उससे शिका-

1. गुड़गुड़ी हुक्का ज्यादा सम्मान-सूचक समझा जाता है, बंधा हुआ हुक्का आम हुक्का होता है ।

यत न सुननी पड़े ।

मेरा दोस्त हरीश कानपुर में काम करता था। छुट्टियों में उसने कलकत्ता आकर मन विचलित कर दिया। बोला, "सुनो जी, अगर लड़की की बात हो तो एक अच्छी-खासी लड़की है ।"

कुछ दिन पहले ही एम० ए० पास किया था। सामने जहां तक दिखाई पड़ता, छुट्टी धू-धू कर रही थी; कोई इम्तिहान नहीं, नौकरी की उम्मीदवारी नहीं, नौकरी नहीं; अपनी जायदाद देखने की फिक्र भी नहीं, आगे कुछ पढ़ना नहीं, इच्छा भी नहीं—होने को अन्दर मां थी और बाहर मामा ।

इस फुरसत के रेगिस्तान में मेरा मन तब संसार-व्यापी नारी-रूप की मरीचिका देख रहा था—आसमान में उसकी नजर थी, हवा में उसका निश्वास, पत्तों के कांपने की आवाज में उसकी भेद-भरी बातें ।

ऐसे में ही हरीश आकर बोला, "अगर लड़की की बात हो तो···" मेरा तन-मन वसन्त की हवा में डोलते बकुल के वन की नयी कोंपलों की तरह धूप-छांह का पट बुनने लगा। हरीश आदमी था रसिक। रस डालकर बात करने की उसमें क्षमता थी, और मेरा मन था प्यासा ।

मैंने हरीश से कहा, "एक बार मामा से बात करके देखो ।"

बैठक जमाने में हरीश बेजोड़ था। इससे सभी जगह उसकी खातिर होती थी। मामा भी उसे पाकर छोड़ना नहीं चाहते थे। बात उनकी बैठक में चली। लड़की की बनिस्बत लड़की के पिता की जानकारी ही उनके लिए जरूरी थी। पिता की उम्र वे जैसी चाहते थे वैसी ही थी। किसी जमाने में उनके कुल में लक्ष्मी का मंगल-कलश भरा रहता था। इस वक्त उसे खाली ही समझो। हां, सतह पर थोड़ा-बहुत बाकी था। अपने प्रांत में खानदान की इज्जत को बचाकर चलना सहज न समझकर वे पश्चिम में जाकर रह रहे थे। वहां गरीब गृहस्थ की ही तरह रहते थे। एक लड़की को छोड़कर उनके और कोई नहीं था। इसलिए उसी के पीछे लक्ष्मी के कलश को बिलकुल उलट देने में हिचकिचाहट नहीं होगी।

यह सब तो अच्छा था। लेकिन लड़की की उम्र पन्द्रह की है, यह सुनकर मामा का मन भारी हो गया। खानदान में तो कोई ऐब नहीं है?

नहीं, कोई ऐब नहीं—पिता अपनी लड़की के लायक खानदानी वर कहीं भी नहीं खोज पाए। एक तो वर की हाट में महंगाई थी, तिस पर धनुष तोड़ने की शर्त; इसलिए लड़की के बाप सब्र किए बैठे हैं लेकिन लड़की की उम्र सब्र नहीं करती।

जो हो, हरीश की रसीली जीभ में खूबियां थीं। मामा का मन नरम पड़ गया। ब्याह की शुरू की बातें आराम से निपट गईं। कलकत्ता के बाहर बाकी जो दुनिया है, सबको मामा अण्डमान द्वीप के अन्दर ही समझते थे। जिन्दगी में एक बार किसी खास काम से वे कोन्नगर तक गए थे। मामा अगर मनु होते तो वे अपनी संहिता में हावड़ा के पुल को पार करने की एकदम मनाही कर देते। मन में इच्छा थी, खुद जाकर लड़की देख आऊं। लेकिन कहने की हिम्मत नहीं हुई।

लड़की को आशीर्वाद देने[1] जिनको भेजा गया वे हमारे वीनू दादा थे, मेरे फुफेरे भाई। उनकी राय, पसन्द और सूझबूझ पर मैं सोलह आने भरोसा कर सकता था। लौटकर वीनू दादा ने कहा, "बुरा नहीं है जी। खरा सोना है।"

वीनू दादा की भाषा बहुत नर्म थी। जहां हम कहते थे 'अपूर्व', वहां वे कहते 'कामचलाऊ'। इसलिए मैं समझा, मेरे भाग्य में ब्रह्मा से कामदेव का कोई विरोध नहीं था।

2

लड़की के पिता शम्भूनाथ बाबू हरीश पर कितना भरोसा करते थे, इसका सबूत यह था कि ब्याह के तीन दिन पहले उन्होंने मुझे पहली बार देखा और आशीर्वाद की रस्म पूरी कर गए। उनकी उम्र चालीस के करीब होगी। बाल काले थे, मूंछों का पकना अभी शुरू ही हुआ था। देखने में सुन्दर थे, भीड़ में देखने पर सबसे पहले उन्हीं पर नजर पड़ने लायक चेहरा।

---

1. बंगाल में ब्याह पक्का करने के लिए एक रस्म होती है जिसमें लड़के की तरफ के लोग लड़की को और लड़की की तरफ के लोग लड़के को आशीर्वाद देकर कोई गहना दे जाते हैं।

उम्मीद करता हूं कि मुझे देखकर वे खुश हुए थे। समझना मुश्किल था क्योंकि वे बहुत कम बोलते थे। जो एकाध बात कहते भी थे उसे जैसे पूरा जोर देकर नहीं कहते थे। इस बीच मामा का मुंह बिना रुके चल रहा था। धन में, इज्जत में हमारी जगह शहर में किसी से कम नहीं थी, इसका वे तरह-तरह से प्रचार कर रहे थे। शम्भूनाथ बाबू ने इस बात में बिलकुल साथ नहीं दिया। किसी भी मौके पर कोई 'हां' तक नहीं सुनाई दी। मैं होता तो नाउम्मीद हो जाता, लेकिन मामा को निराश करना मुश्किल था। उन्होंने शम्भूनाथ बाबू का ठण्डा स्वभाव देखकर सोचा कि आदमी बिलकुल बेजान है, जरा भी तेज नहीं। सम्बन्धियों में और जो भी कुछ हो, तेज होना नागवार है, इसलिए मन ही मन मामा खुश हुए। शम्भूनाथ बाबू जब उठे तो मामा ने सहज ही ऊपर से ही उनको विदा कर दिया, गाड़ी में बिठाने नहीं गये।

दहेज के बारे में दोनों ओर से बात पक्की हो गई थी। मामा अपने को बहुत होशियार समझकर अपने पर घमण्ड करते थे। बातचीत में कहीं भी कोई गुंजाइश न छोड़ते। रुपये की संख्या तो निश्चित थी ही, ऊपर से गहना कितने वजन के और सोना किस दर का होगा, यह भी एकदम तय हो गया था। मैं खुद इन बातों में नहीं था; न जानता था कि क्या लेन-देन तय हुआ है। मैं जानता था कि यह मोटी बात भी ब्याह का एक खास हिस्सा है; और उसका जिम्मा जिनके ऊपर है वे एक कौड़ी भी नहीं ठगाएंगे। असल में बहुत होशियार आदमी की हैसियत से मामा हमारे सारे परिवार में घमण्ड की चीज थे। जहां कहीं भी हमारा कोई रिश्ता हो उन सभी जगहों में वे अक्ल की टक्कर में जीतेंगे, यह बिलकुल पक्की बात थी। इसलिए हमारे यहां कभी न रहने पर भी और दूसरी ओर भारी कमियां होते हुए भी हम जीतेंगे, हमारे परिवार की यह जिद थी—इसमें चाहे कोई बचे या मरे।

हल्दी चढ़ाने की रस्म बड़ी धूमधाम से हुई। ढोने वाले इतने थे कि उनकी गिनती का हिसाब करने के लिए क्लर्क रखना पड़ता। उनको विदा करने में दूसरी ओर के लोगों को जो परेशानी होगी उसको याद करके मामा के साथ हां में हां मिलाकर मां खूब हंसीं।

बैण्ड, शहनाई, फैन्सी कंसर्ट वगैरह जहां जितनी तरह की जोरदार आवाजें थीं, सबको एकसाथ मिलाकर वहशी शोर रूपी पागल हाथी से संगीत सरस्वती के कमल को तहस-नहस करता हुआ मैं ब्याह वाले घर में जा पहुंचा। अंगूठी, हार, जरी, जवाहरात से मेरी देह ऐसी दिखाई दे रही थी जैसे गहने की दुकान नीलाम पर चढ़ी हो। उनके होने वाले जमाई की कीमत कितनी थी यह जैसे कुछ हद तक सभी अंगों पर साफ-साफ लिखकर होने वाले ससुर के साथ मैं मुकाबिला करने चला था।

मामा ब्याह वाले घर पहुंचकर खुश नहीं हुए। एक तो आंगन में बरातियों के बैठने के लायक जगह नहीं थी, तिस पर सारी तैयारी एकदम मामूली ढंग की थी। ऊपर से शम्भूनाथ बाबू का बर्ताव भी निहायत ठंडा था। उनकी ओर से आवभगत में भी कमी थी। मुंह में शब्द ही न थे। बैठे गले, गंजी खोपड़ी, काले रंग और भारी शरीर वाले एक वकील दोस्त अगर कमर में चादर बांधे, बराबर हाथ जोड़े, सिर हिलाते हुए, शिष्ट हंसी मिले स्वर में और मीठी बातों से कन्सर्ट पार्टी के करताल बजाने वाले से लेकर बराती के हर एक तक को बार-बार भरपूर तौर पर सराबोर न कर देते तो शुरू में ही मामला इस पार या उस पार हो जाता।

मेरे लोगों के साथ बैठने के कुछ देर बाद ही मामा शंभूनाथ बाबू को बगल के कमरे में बुला ले गये। पता नहीं, क्या बातें हुई। कुछ देर बाद ही शंभूनाथ बाबू ने आकर मुझसे कहा, "लाला जी, जरा इधर तो आइये!"

मामला यह था—सभी का न हो, लेकिन किसी-किसी आदमी की जिन्दगी में कोई एक लक्ष्य रहता है। मामा का सिर्फ एक लक्ष्य था—वे किसी भी तरह किसी से ठगे नहीं जाएंगे। उन्हें डर था कि उनके समधी उन्हें गहनों में धोखा दे सकते हैं। ब्याह हो जाने पर उस धोखे से निपटने का कोई रास्ता नहीं रह सकेगा। घर-किराया, भेंट-सौगात, लोगों की विदाई वगैरह के बारे में जिस तरह की खींचातानी का नजारा देखने को मिला उससे मामा ने तय किया था—लेन-देन के बारे में इस आदमी की केवल जबानी बात पर भरोसा करने से काम नहीं चलेगा। यही सोचकर घर के सुनार तक को साथ ले गये थे। बगल के कमरे में जाकर देखा,

मामा तो एक चौकी पर बैठे थे और एक सुनार अपनी तराजू, बाट और कसौटी वगैरह लिये जमीन पर।

शंभूनाथ बाबू ने मुझसे कहा, "तुम्हारे मामा कहते हैं कि ब्याह शुरू होने से पहले ही वे लड़की के सारे जेवर जंचवाकर देखेंगे, इसमें तुम्हारी क्या राय है?"

मैं सिर झुकाये चुप रहा।

मामा बोले, "वह क्या बोलेगा? मैं जो कहूंगा, वही होगा।"

शंभूनाथ बाबू ने मेरी ओर देखकर कहा, "तो फिर यही तय रहा? वे जो कहेंगे वही होगा? इस बारे में तुम्हें कुछ नहीं कहना है?"

मैंने जरा गर्दन हिलाकर इशारे से बताया, "इन सब बातों में मेरा बिलकुल भी दखल नहीं है।"

"अच्छा तो बैठो, लड़की की देह से सारे जेवर उतारकर लाता हूं।" कहते हुए वे उठे।

मामा बोले, "अनुपम यहां क्या करेगा? वह लोगों में जाकर बैठे।"

शंभूनाथ बोले, "नहीं, लोगों में नहीं, यहीं बैठना होगा।"

कुछ देर बाद उन्होंने एक अंगोछे में बंधे जेवर लाकर चौकी के ऊपर फैला दिये। सारे जेवर उसकी दादी के जमाने के थे, नये फैशन का बारीक काम उनमें नहीं था। जैसा मोटा था वैसा ही भारी था।

सुनार ने जेवर हाथ में उठाकर कहा, "इसे क्या देखूं, इसमें मिलावट नहीं है—ऐसे सोने का आजकल चलन ही नहीं है।"

यह कहते हुए उसने मगर के मुंह वाला मोटा एक बाला कुछ दबाकर दिखाया, जो टेढ़ा हो जाता था।

मामा ने नोट-बुक ले जेवरों की सूची दर्ज कर ली, कहीं, जो दिखाया गया था उसमें से कुछ कम न हो जाये। हिसाब लगाकर देखा, जेवर जिस मात्रा में देने की बात थी उनकी गिनती, दर और वजन उससे अधिक थे।

गहने में एक जोड़ा ईयर रिंग था। शंभूनाथ ने उसको सुनार के हाथ में देकर कहा, "इसकी जरा जांच करके देखो।"

सुनार ने कहा, "यह विलायती माल है, इसमें सोने का हिस्सा मामूली

ही है।"

शंभूनाथ ने ईयर रिंग की जोड़ी मामा के हाथ में देते हुए कहा, "इसे आप ही रखें।"

मामा ने उसे हाथ में लेकर देखा, यही ईयर रिंग लड़की को देकर उन्होंने आशीर्वाद की रस्म पूरी की थी।

मामा का चेहरा लाल हो गया, यह गरीब उनको ठगना चाहेगा, लेकिन वे ठगे नहीं जाएंगे। इस खुशी से वे महरूम रह गए और इसके अलावा कुछ ऊपर से भी मिला। मुंह बहुत भारी करके बोले, "अनुपम, जाओ तुम बरात में जाकर बैठो।"

शंभूनाथ बाबू बोले, "नहीं, अब लोगों के बीच नहीं बैठना होगा। चलिए, पहले आप लोगों को खिला दूं।"

मामा बोले, "यह क्या कह रहे हैं ? लग्न···"

शंभूनाथ बाबू ने कहा, "उसके लिए कोई फिक्र न करें—अभी चलिये।"

आदमी निहायत भला मानस था, लेकिन अन्दर से कुछ ज्यादा हठी मालूम हुआ। मामा को उठना पड़ा। बरातियों का खाना हो गया। पूरी तैयारी में कोई दिखावा नहीं था; लेकिन खाना अच्छा बना था और सब कुछ साफ-सुथरा था। इससे सभी खुश हो गए।

बरातियों का खाना निबटने पर शंभूनाथ बाबू ने मुझसे खाने को कहा। मामा ने कहा, "यह क्या कर रहे हैं ? ब्याह के पहले दूल्हा कैसे मुंह जूठा करेगा ?"

इस बारे में मामा की बताई राय की पूरी तरह अनदेखी करके मेरी ओर देखकर बोले, "तुम क्या कहते हो ? खाना खा लेने में कोई हर्ज है ?"

मां के जीते-जागते आदेश के रूप में मामा हाजिर थे, उनके खिलाफ चलना मेरे लिए नामुमकिन था। मैं खाने के लिए नहीं बैठ सका।

तब शंभूनाथ बाबू ने मामा से कहा, "आप लोगों को बहुत तकलीफ दी है। हम लोग सुखी-सम्पन्न नहीं हैं। आप लोगों के लायक इन्तजाम नहीं कर सके, माफ करेंगे। रात हो गई है, आप लोगों की तकलीफ और नहीं बढ़ाना चाहता। तो फिर इस वक्त···"

मामा बोले, "तो बैठक में चलिए, हम तो तैयार हैं।"

शंभूनाथ बोले, "तब आपकी गाड़ी बुलवा दूं ?"

मामा ने चौंककर कहा, "मजाक कर रहे हैं क्या ?"

शंभूनाथ ने कहा, "मजाक तो आप ही कर चुके हैं। मजाक के मौके को हमेशा के लिए टिकाऊ बना देने की इच्छा नहीं है।"

मामा आंखें फाड़कर देखते हुए चुप रह गए।

शंभूनाथ ने कहा, "अपनी लड़की का जेवर मैं चुरा लूंगा, जो यह बात सोचता है, उसके घर में मैं लड़की नहीं दे सकता।"

मुझसे एक शब्द कहना भी उन्होंने जरूरी नहीं समझा।

वजह थी कि यह साबित हो गया था, कि मैं कुछ भी नहीं हूं।

उसके बाद जो हुआ उसे बताने को मन नहीं करता। झाड़-फानूस तोड़-फोड़कर, चीज-वस्तु को तहस-नहस करके बरातियों का झुण्ड दक्ष-यक्ष का नाटक पूरा करके बाहर चला आया।

घर लौटने पर बैण्ड, शहनाई और कंसर्ट सब साथ नहीं बजे और अभ्रक के झाड़ ने आसमान के तारों के ऊपर अपनी जिम्मेदारी पूरी कर कहां गायब हो गए, पता नहीं चला।

3

घर के लोग गुस्से से आग-बबूला हो गए। लड़की के पिता को इतना घमण्ड ! कलियुग पूरी तरह से आ गया है।

सब बोले, "देखें, लड़की का ब्याह कैसे करते हैं।" लेकिन, लड़की का ब्याह नहीं होगा, यह डर जिसके मन में न हो उसको सजा देने का तरीका क्या है !

बंगाल-भर में मैं ही सिर्फ एक मर्द था, जिसको खुद लड़की के पिता ने जनवासे से लौटा दिया था। इतने अच्छे वर के माथे पर कलंक का इतना बड़ा धब्बा ! किस दुष्ट ग्रह ने इतना प्रचार करके गाजे-बाजे से धूम-धाम करके आंक दिया ? बराती यह कहते हुए माथा पीटने लगे कि "ब्याह हुआ ही नहीं, लेकिन हमको धोखा देकर खिला दिया—आंत का सारा खाना निकालकर वहां फेंक आने से यह अफसोस मिटेगा ?"

"ब्याह तोड़ने का और बेइज्जती का दावा करूंगा।" कहकर मामा घूम-घूमकर खूब शोर मचाने लगे। शुभचिंतकों ने समझा दिया कि ऐसा करने से जो तमाशा बाकी रह गया है वह भी पूरा हो जायगा।

कहना बेकार है कि मैंने भी खूब गुस्सा किया था। "किसी तरह शम्भूनाथ बुरी तरह हारकर मेरे पैरों में आ गिरे" मसों पर ताव देते-देते बस यही इच्छा करता रहा।

लेकिन इस बौखलाहट के गंदले बहाव के पास एक और सोता बह रहा था जिसका रंग बिलकुल भी गंदला नहीं था। मेरा मन उस अन-जान लड़की की ओर दौड़ गया। अभी तक उसको किसी तरह भी खींचकर लौटा नहीं सका। केवल दीवार-भर की आड़ रह गई। उसके माथे पर चंदन लगा था, देह पर लाल साड़ी, चेहरे पर शर्म की ललाई, मन में क्या था, यह कैसे कह सकता हूं। मेरे कल्पलोक की कल्पलता वसन्त के सारे फूलों का भार मुझे सौंप देने के लिए झुक पड़ी थी। हवा आ रही थी, खुशबू मिल रही थी, पत्तों की आवाज सुन रहा था—केवल एक कदम बढ़ने की देर थी, इसी बीच वह कदम-भर की दूरी पल-भर में हद को पार कर गई।

इतने दिन तक रोज शाम को मैंने वीनू दादा के घर जाकर उनको परेशान कर डाला था। लेकिन दादा के बयान का लहजा बहुत चुस्त होने की वजह से उनकी हर बात ने चिनगारी की तरह मेरे मन में आग लगा दी थी। मैंने समझा था कि लड़की की शक्ल बड़ी खूबसूरत थी, लेकिन उसको न तो आंखों से देखा और न उसकी तस्वीर देखी। सब कुछ अधूरा रह गया। बाहर तो वह पकड़ में आई ही नहीं, उसे मन में भी नहीं पा सका—इसी वजह से मन उस दिन की उस ब्याह वाली जगह की दीवार के बाहर भूत जैसी लम्बी-लम्बी सांसें लेकर चक्कर काटने लगा।

हरीश से सुना, लड़की को मेरा फोटोग्राफ दिखाया गया था। पसन्द जरूर ही किया होगा। न करने की तो कोई वजह ही नहीं थी। मेरा मन कहता है, वह तस्वीर उसके किसी बक्से में छिपी रखी है: कमरे का दरवाजा बन्द करके अकेली किसी-न-किसी सुनसान दोपहरी में क्या

वह उसे खोलकर नहीं देखती होगी ? जब झुककर देखती होगी तब तस्वीर के ऊपर क्या उसके मुंह के दोनों ओर से खुले बाल आकर नहीं पड़ते होंगे ? अचानक बाहर किसी के पैर की आहट पाते ही क्या वह झटपट अपने खुशबू-भरे आंचल में तस्वीर को छिपा नहीं लेती होगी ?

दिन बीत जाते हैं। एक साल बीत गया। मामा तो शर्म के मारे ब्याह के रिश्ते की बात ही नहीं छेड़ पाते। मां चाहती थी, मेरी बेइज्जती की बात जब समाज के लोग भूल जाएंगे तब ब्याह की कोशिश करेगी।

दूसरी ओर मैंने सुना कि शायद उस लड़की को अच्छा दूल्हा मिल गया था, लेकिन उसने प्रतिज्ञा की है कि ब्याह नहीं करेगी। सुनकर मेरा मन खुशी से भर गया। मैं ख्याल में देखने लगा, वह अच्छी तरह खाती नहीं है; शाम हो जाती है, वह बाल बांधना भूल जाती है, उसके पिता उसके मुंह की ओर देखते हैं और सोचते हैं, 'मेरी लड़की दिनों-दिन ऐसी क्यों होती जा रही है ?' एकाएक किसी दिन उसके कमरे में आकर देखते हैं, लड़की की दोनों आंखें आंसुओं से भरी हैं। पूछते हैं, 'बेटी, तुझे क्या हो गया है, मुझे बता ?' लड़की झटपट आंसू पोंछकर कहती है, 'कहां, कुछ तो नहीं हुआ, पिता जी !' बाप की इकलौती लड़की है न, बड़ी लाड़ली है। सूखे के दिनों में फूल की कली जैसे जब लड़की एकदम मुरझा गई तो पिता के प्राण और ज्यादा बर्दाश्त नहीं कर सके। हठ छोड़कर वे दौड़कर मेरे दरवाजे पर आये। उसके बाद ? उसके बाद मन में जो गंदली धारा बह रही थी वह जैसे काले सांप की तरह शक्ल लेकर फुफकार उठी। उसने कहा, 'अच्छा है, फिर एक बार ब्याह का साज सजाया जाये, रोशनी जले, देश-देश के लोगों को इसमें शामिल होने का न्यौता दिया जाये, उसके बाद तुम वर के मौर को पैरों से कुचलकर साथ आये लोगों को लेकर लड़की वाले घर से उठकर चले जाओ !' लेकिन जो धारा आंसू की तरह साफ थी, वह राजहंस की शक्ल अख्तियार करके बोली, 'जिस तरह मैं एक दिन दमयन्ती के बगीचे में गई थी उसी तरह मुझे एक बार उड़कर जाने दो—मैं विरह की मारी उस लड़की के कानों में एक बार खुशी की खबर दे आऊं।' उसके बाद दुख की रात बीत गई,

नई बारिश का पानी बरसा, मुरझाये फूल ने मुंह उठाया, इस बार उस दीवार के बाहर सारी दुनिया के और सब लोग रह गये, केवल एक आदमी दाखिल हुआ। फिर ? फिर मेरी कहानी खत्म हो गई।

4

लेकिन कहानी इस तरह खत्म नहीं हुई। जहां पहुंचकर उसका ओर-छोर नहीं रहा है वहां का थोड़ा-सा ब्यौरा बताकर अपना यह लेख पूरा करूं।

मां को लेकर तीर्थ करने जा रहा था। जिम्मेदारी मेरे ऊपर थी, क्योंकि मामा इस बार भी हावड़ा के पुल के पार नहीं हुए। रेलगाड़ी में सो रहा था। झोंके खाते दिमाग में तरह-तरह के बिखरे सपनों का झुन-झुना बज रहा था। अचानक किसी एक स्टेशन पर नींद खुल गई, वह भी रोशनी-अंधेरा मिला एक सपना था। केवल आसमान के तारे बहुत जाने-पहचाने लगे थे—और सब अनजान धुंधला था; स्टेशन की कई बत्तियां सीधी खड़ी होकर रोशनी से यह धरती कितनी अनजान है और जो चारों ओर है, वह कितना ज्यादा दूर है, यही दिखा रही थीं। गाड़ी में मां सो रही थी; बत्ती के नीचे हरा परदा टंगा था, ट्रंक-बक्स, सामान सब एक-दूसरे के ऊपर बिखरे पड़े थे। वह जैसे सपने की दुनिया का उलटा-पुलटा सामान हो, जो शाम की हरी बत्ती की टिमटिमाती रोशनी में होने और न होने के बीच में न जाने किस ढंग से पड़ा था।

इस बीच निराली दुनिया की निराली रात में कोई बोल उठा, "जल्दी से आ जाओ, इस डिब्बे में जगह है।"

लगा, जैसे गीत सुना हो। बंगाली लड़की के मुंह से बंगला में की हुई बात कितनी मीठी लगती है इसका पूरा-पूरा अन्दाजा ऐसे बेवक्त में ऐसी अप्रत्याशित जगह पर अचानक सुनने पर ही किया जा सकता है। लेकिन, इस आवाज को निरी एक लड़की की आवाज कहकर लकीर में बांध देने से ही काम नहीं चलेगा। यह केवल एक आदमी की आवाज थी, सुनते ही मन कह उठता है, 'ऐसा तो पहले कभी नहीं सुना।'

गले की आवाज मेरे लिए हमेशा ही बड़ा सच रही है। शक्ल भी

कम बड़ा सच नहीं है, लेकिन आदमी में जो बिलकुल निजी और अकथनीय है, मुझे लगता है, जैसे गले की आवाज उसका ही रूप हो। झटपट जंगला खोलकर मैंने मुंह बाहर निकाला, कुछ भी नहीं दिखा। प्लेटफार्म पर अंधेरे में खड़े गार्ड ने अपनी एक आंख वाली लालटेन दिखाई, गाड़ी चल दी; मैं जंगले के पास बैठा रहा। मेरी आंखों के सामने कोई शक्ल नहीं थी, लेकिन मन में मैं एक मन का रूप देखने लगा। वह जैसे इस तारों-भरी रात की तरह हो, जो छा तो जाती है, लेकिन उसे पकड़ा नहीं जा सकता। ओ आवाज! अनजान गले की आवाज! पल-भर में तुम मेरे पुराने परिचितों की जगह पर आकर बैठ गई हो। तुम कैसी अनोखी हो, अस्थिर काल के परेशान दिल के ऊपर फूल की तरह खिली हो, लेकिन उसकी लहरों के धक्के से कोई पंखुड़ी तक नहीं हिलती, अतिशय नजाकत में जरा भी दाग नहीं पड़ता।

गाड़ी लोहे के मृदंग पर ताल देती हुई चली। मैं मन में गाना सुनते हुए जा रहा था। उसकी एक ही टेक थी, 'डिब्बे में जगह है।' 'है क्या, जगह है क्या ?' जगह मिले कैसे, कोई भी किसी को पहचानता नहीं। साथ ही यह न पहचानना-भर कोहरा है, माया है, उसके कमजोर पड़ते ही पहचान खत्म नहीं होती। ओ अमृत-भरी आवाज! जिस दिल की तुम अनोखी शक्ल हो, वह क्या मेरी बहुत पहचानी नहीं है ? जगह है, है; जल्दी बुलवाया था, जल्दी ही आया हूं, पल-भर की भी देर नहीं की है।

रात में ठीक से नींद नहीं आई, करीब हर स्टेशन पर एक बार मुंह निकालकर देखता, डर लगने लगा कि जिसको देख नहीं पाया वह कहीं रात में ही न उतर जाये।

दूसरे दिन सुबह एक बड़े स्टेशन पर गाड़ी बदलनी पड़ेगी। हमारे टिकट फर्स्ट क्लास के थे—उम्मीद थी, भीड़ नहीं होगी। उतरकर देखा; प्लेटफार्म पर साहबों और अर्दलियों का झुण्ड सामान लिए गाड़ी का इन्तजार कर रहा था। फौज के कोई एक बड़े जनरल साहब घूमने के लिए निकले थे। दो-तीन मिनट के बाद ही गाड़ी आ गई। समझा, फर्स्ट क्लास की उम्मीद छोड़नी पड़ेगी। मां को लेकर डिब्बे में चढ़ूं, इस

बारे में बड़ी फिक्र में पड़ गया। पूरी गाड़ी में भीड़ थी। दरवाजे-दरवाजे झांकता हुआ घूमने लगा। इसी बीच सेकेण्ड क्लास के एक डिब्बे में से एक लड़की ने मेरी मां को देख करके कहा, "आप हमारे डिब्बे में आइए न, यहां जगह है।"

मैं तो चौंक पड़ा। वही निराली मीठी आवाज और वही गीत की टेक 'जगह है'। पल-भर की भी देर न कर मां को लेकर डिब्बे में चढ़ गया। सामान चढ़ाने का वक्त करीब नहीं ही था। मेरे जैसा निकम्मा दुनिया में कोई न होगा। उस लड़की ने ही कुलियों के हाथ से झटपट चलती गाड़ी में हमारे बिस्तर वगैरह खींच लिए। फोटो खींचने का मेरा एक कैमरा स्टेशन पर ही छूट गया; ख्याल ही न रहा।

उसके बाद क्या लिखूं, नहीं जानता। मेरे मन में एक लम्बी खुशी की तस्वीर है, उसे कहां से शुरू करूं, कहां खत्म करूं? बैठे-बैठे एक वाक्य के बाद दूसरे वाक्य को जोड़ने की इच्छा नहीं होती।

इस बार उसी आवाज को आंखों से देखा। इस वक्त भी वह आवाज ही जान पड़ी। मां के मुंह की ओर झांका, देखा कि उनकी आंखों की पलकें नहीं झपक रही थीं। लड़की की उम्र सोलह या सत्रह की होगी लेकिन जवानी ने उसकी देह, मन पर कहीं भी जैसे जरा भी अपनी छाप न डाली हो। उसकी चाल सहज, देह का तेज साफ, खूबसूरती की शुद्धता निराली थी, उसमें कहीं कोई कमी न थी।

मैं देख रहा हूं, ज्यादा कुछ भी कहना मेरे लिए मुश्किल है। यही नहीं, वह किस रंग की साड़ी कैसे पहने हुए थी, यह भी ठीक से नहीं कह सकता। यह बिलकुल सच है कि उसके पहनावे-ओढ़ावे में ऐसा कुछ नहीं था जो उसे छोड़कर खास तौर से आंखों को अपनी ओर खींचे। वह अपने चारों ओर की चीजों से बढ़कर थी—रातरानी की सफेद कलियों के जैसे सीधे डण्ठल के ऊपर बैठी, जिस बेल पर खिली थी उससे एकदम अलग पड़ गई थी। साथ में दो-तीन छोटी-छोटी लड़कियां थीं, उनके साथ उसकी हंसी और बातचीत का कोई ओर-छोर न था। मैं हाथ में एक किताब लेकर उस ओर कान लगाये हुए था। जो कुछ कान में पड़ रहा था वह सब तो बच्चों के साथ बचपने की बातें थीं। उसकी

खूबी यह थी कि उसमें उम्र का फर्क बिलकुल भी नहीं था, छोटों के साथ वह आसानी और बड़ी खुशी से छोटी हो गई थी। साथ में बच्चों की कहानियों की तस्वीरों वाली किताबें थीं। उसीकी कोई कहानी सुनाने के लिए लड़कियों ने उसे घेर रखा था, यह कहानी जरूर ही उन्होंने बीस-पच्चीस बार सुनी होगी। लड़कियों का इतना हठ क्यों था, यह मैं समझ गया। उस मीठे गले के सोने की छड़ी से सारी कहानी सोना हो जाती थी। लड़की की पूरी देह, मन पूरी तरह जानदार थी, उसकी सारी चाल-ढाल, छुअन में जान उमड़ रही थी। इसलिए लड़कियां जब उसके मुंह से कहानी सुनतीं, तब, कहानी नहीं, उसीको सुनतीं; उनके दिल पर प्राणों का झरना गिरने लगता। उसकी उस लहलहाती जान ने मेरी उस दिन की सारी सूरज-किरणों को जानदार बना दिया, मुझे लगा, मुझे जिस कुदरत ने अपने आसमान से बांधकर रखा था, वह उसी युवती के ही सम्पूर्ण, दमकते प्राणों का संसार-भर में फैलाव था—दूसरे स्टेशन पर पहुंचते ही खोमचे वाले को बुलाकर उसने काफी-सी दाल-मोठ खरीदी और लड़कियों के साथ मिलकर बिलकुल बच्चों के जैसे हंसते-खेलते हुए सहज भाव से खाने लगी। मेरी सोच-समझ तो जैसे जकड़ गई थी—क्यों मैं बिलकुल सहज भाव से, उस हंसमुख लड़की से एक मुट्ठी दाल-मोठ न मांग सका? हाथ बढ़ाकर अपना लालच क्यों नहीं जाहिर किया?

मां अच्छे और बुरे सोच के बीच दुविधा में पड़ी हुई थीं। डिब्बे में मैं था मर्द, तो भी उसे कोई झिझक नहीं थी, खासकर वह ऐसी भुक्खड़ की तरह खा रही थी, यह बात उनको पसन्द नहीं आ रही थी और उसे बेहया कहने में भी उनको हिचक नहीं हुई। उन्हें लगा, इस लड़की की उम्र हो गई है, लेकिन शिक्षा नहीं मिली। मां एकाएक किसी से बातचीत नहीं कर पातीं। लोगों के साथ दूर-दूर रहने की ही उनकी आदत थी। इस लड़की को पहचान लेने की उनकी बड़ी इच्छा थी, लेकिन आदत से लाचार थीं।

इसी समय गाड़ी एक बड़े स्टेशन पर आकर रुकी। उन जनरल साहब के साथियों का एक झुण्ड इस स्टेशन से चढ़ने की कोशिश कर रहा था। गाड़ी में कहीं जगह नहीं थी। कई बार वे डिब्बे के सामने से

होकर निकले। मां तो डर के मारे गुमसुम हो गयीं, मैं भी मन में सुकून का अहसास नहीं कर रहा था!

गाड़ी छूटने के थोड़ी देर पहले एक देशी रेल-कर्मचारी के नाम लिखे हुए दो टिकिट डिब्बों की दो बेंचों के सिरों पर लटकाकर मुझसे कहा गया, "इस डिब्बे की ये दो बेंचें पहले से ही दो साहबों ने रिजर्व करवा रखी हैं, आप लोगों को दूसरे डिब्बे में जाना होगा।"

मैं तो झटपट घबराकर खड़ा हो गया। लड़की हिन्दी में बोली, "नहीं, हम डिब्बा नहीं छोड़ेंगे।"

उस आदमी ने जिद करते हुए कहा, "बिना छोड़े कोई चारा नहीं है।"

लेकिन लड़की के उतरने का कोई इरादा न देखकर वह उतरकर अंग्रेज स्टेशन मास्टर को बुला लाया। उसने आकर मुझसे कहा, "मुझे खेद है, लेकिन···"

सुनकर मैंने 'कुली-कुली' की पुकार लगाई। लड़की ने उठकर दोनों आंखों से आग बरसाते हुए कहा, "नहीं, आप नहीं जा सकते। जैसे हैं, बैठे रहिये!"

यह कहकर उसने दरवाजे के पास खड़े होकर स्टेशन मास्टर से अंग्रेजी में कहा, "यह डिब्बा पहले से रिजर्व है, यह बात झूठ है।"

यह कहकर उसने नाम लिखे टिकटों को खोलकर प्लेटफार्म पर फेंक दिया।

इस बीच अर्दली के साथ वर्दी पहने साहब दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। डिब्बे में अपना सामान चढ़ाने के लिए पहले उसने अर्दली को इशारा किया था। उसके बाद लड़की के मुंह की ओर देखकर, उसकी बात सुनकर, उसका रंग-ढग देखकर स्टेशन मास्टर को थोड़ा छुआ और उसको ओट में ले जाकर पता नहीं क्या कहा। देखने में आया, गाड़ी छूटने का वक्त बीत जाने पर भी और एक डिब्बा जोड़ा गया, तब कहीं ट्रेन चली। लड़की ने अपना दल-बल लेकर फिर दुबारा दाल-मोठ खाना शुरू कर दिया, और मैं शर्म के मारे जंगले के बाहर मुंह निकालकर कुदरत की खूबसूरती देखने लगा।

गाड़ी कानपुर में आकर रुकी। लड़की सामान बांधकर तैयार थी। स्टेशन पर एक ओर बंगाली नौकर दौड़कर उनको उतारने की कोशिश करने लगा।

तब फिर मां से नहीं रहा गया। पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है, बेटी ?"

लड़की बोली, "मेरा नाम कल्याणी है।"

सुनकर मां और मैं दोनों ही चौंक पड़े।

"तुम्हारे पिता…"

"वे यहां डॉक्टर हैं, उनका नाम शंभूनाथ सेन है।"

इसके बाद ही वे उतर गयीं।

उपसंहार

मामा की मनाही को ध्यान न देकर, माता का कहना ठुकराकर मैं अब कानपुर आ गया हूं। कल्याणी के पिता और कल्याणी से भेंट हुई है। हाथ जोड़े हैं, सिर झुकाया है, शंभूनाथ बाबू का दिल पिघला है। कल्याणी कहती है, "मैं ब्याह नहीं करूंगी।"

मैंने पूछा, "क्यों ?"

उसने कहा, "मां की आज्ञा।"

गजब हो गया ! इस ओर भी मामा हैं क्या ?

बाद में समझा, मातृभूमि है। वह रिश्ता टूट जाने के बाद कल्याणी ने लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने का संकल्प कर लिया है।

लेकिन मैं उम्मीद नहीं छोड़ सका। वह आवाज मेरे दिल में आज भी गूंज रही है। वह जैसे कोई उस किनारे की बांसुरी हो—मेरी दुनिया के बाहर से आई थी, मुझे सारी दुनिया से बाहर बुला रही थी। और, वह जो रात के अंधेरे में मेरे कान में पड़ा था, 'जगह है', वह मेरी पूरी जिन्दगी के संगीत की टेक बन गयी। तब मेरी उम्र थी तेईस, अब हो गई है सत्ताईस। अभी तक उम्मीद नहीं छोड़ी है, लेकिन मामा को छोड़ दिया है। इकलौता लड़का होने के कारण मां मुझे नहीं छोड़ सकीं।

तुम सोच रहे होगे, मैं ब्याह की उम्मीद करता हूं। नहीं, कभी नहीं। मुझे याद है, केवल उस एक रात के अनजान गले की मीठी आवाज से छलकती आशा। है—जरूर है ? जरूर है। नहीं तो खड़ा कहां होऊंगा ? इसी से साल के बाद साल बीतते जाते हैं—मैं यहीं हूं। भेंट होती है, वही आवाज सुनता हूं, जब मौका मिलता है, उसका काम कर देता हूं—और मन कहता है—यही तो जगह मिली है, ओ री अनजान ! तुम्हारी पहचान पूरी नहीं हुई, पूरी होगी भी नहीं, लेकिन मेरी किस्मत अच्छी है; मुझे जगह मिल चुकी है।

पात्र और पात्री

इससे पहले तितली[1] कभी मेरे भाग्य पर तो नहीं बैठी, लेकिन एक बार मेरे मन के कमल पर जरूर बैठी थी; तब मेरी उम्र सोलह की थी। इसके बाद कच्ची नींद में अचानक जगा देने से जैसे फिर नींद नहीं आती, वही हालत मेरी हुई।

मेरे भाई-बन्धुओं में से कोई-कोई नारी ग्रहण करने के मामले में दूसरा, यही नहीं, तीसरा प्रमोशन तक पा चुके थे, पर मैं कुंवारेपन की आखिरी बेंच पर बैठा-बैठा सूनी दुनिया की कड़ियां गिनते-गिनते जिन्दगी बिताता रहा।

मैंने चौदह वर्ष की उम्र में मैट्रिक पास किया था, तब ब्याह या ऐंट्रेंस के इम्तिहान में उम्र पर कोई गौर नहीं किया जाता था। मैंने पढ़ाई की किताबें कभी नहीं घोंटीं, इसलिए मुझे कभी भी देह या मन में बदहजमी की तकलीफ नहीं झेलनी पड़ी। जैसे चूहा दांत गड़ाने लायक चीज पाते ही उसे काट डालता है, चाहे वह खाने की न हो वैसे ही छपी किताब देखते ही पढ़ डालने की मेरी बचपन से ही आदत थी। दुनिया में पढ़ाई की किताबों की बनिस्बत पढ़ाई के दायरे से बाहर की किताबों की

1. बंगालियों में तितली का शरीर के किसी अंग पर बैठना ब्याह हो जाने का सूचक है।

गिनती कहीं ज्यादा है, इसलिए मेरे किताब रूपी सौरजगत् में स्कूली पढ़ाई रूपी धरती की बनिस्बत स्कूल से बाहर की किताबों का सूरज चौदह लाख गुना बड़ा था। फिर भी, अपने संस्कृत के पंडित जी की कटु भविष्यवाणी के बावजूद मैं इम्तिहान में पास हो गया।

मेरे पिता डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। तब हम सातक्षीरा या जहानाबाद या ऐसी ही किसी जगह में थे। शुरू में ही कह देना अच्छा है, देश, काल एवं पात्र के बारे में मेरे इतिहास में जो साफ लेख होंगे वे सभी साफ तौर पर मनगढ़ंत होंगे। जिनके लिए रस के रहस्य की बनिस्बत जानने का भाव बड़ा है, वे ठगे जाएंगे। पिता जी तब तहकीकात के लिए बाहर गये हुए थे। मां का कोई व्रत था; दक्षिणा तथा भोजन के लिए उन्हें ब्राह्मण की तलाश थी। इस तरह के धार्मिक कामों के लिए हमारे पंडित जी मां के प्रमुख सहयोगी थे। इसी कारण मां उनके सामने खास तौर से कृतज्ञ थीं, पिता का विचार इससे बिलकुल उलटा था।

आज खाने के बाद दान-दक्षिणा का जो प्रबन्ध हुआ था, उसकी सूची में मुझे भी रखा गया था। उस बारे में जो राय-मशविरा हुआ था, उस का सारा निचोड़ यह है—मेरा तो कलकत्ता कालेज में जाने का वक्त आ गया। ऐसी हालत में लड़के के बिछोह के दुख को दूर करने के लिए कोई तरकीब ढूंढ़ निकालना जरूरी था। अगर एक बच्ची बहू मां की गोद के पास रहे तो उसको पालने-पोसने, देख-भाल करने में उनके दिन कट सकते हैं। पंडित जी की लड़की काशीश्वरी इस काम के लिए ठीक थी। वजह, वह बच्ची भी थी, शरीफ भी थी और कुलरूपी शास्त्र के हिसाब-किताब में उसका और मेरा एक-एक अंक मिलता था। इसके अलावा ब्राह्मण को लड़की के बोझ से बरी कराने का पुण्य-फल भी लालच की बात थी।

मां का मन डोल गया। लड़की को एक बार देखने की जरूरत जाहिर करते ही पंडित जी बोले, "उनकी घर वाली कल रात को ही लड़की को लेकर घर आ गयी है।" मां को पसन्द आने में देर न लगी; क्योंकि पसन्द के साथ पुण्य के बंटवारे के जुड़ जाने से आसानी से वजन बढ़ गया। मां बोलीं, "लड़की अच्छे लच्छनों वाली है।" मतलब, पूरी

तरह खूबसूरत न होने पर भी तसल्ली की जा सकती थी ।

बात धीरे-धीरे मेरे कानों तक पहुंची । जिन पंडित जी की मूर्ति से मैं बराबर डरता आया था उन्हीं की लड़की के साथ मेरा ब्याह, यह अटपटापन मेरे मन को सबसे पहले बड़े जोर से अपनी ओर खींच मनगढ़ंत कहानी की तरह अचानक सुबन्त प्रकरण जैसे अपने सारे अनुस्वार-विसर्ग झाड़कर एकाएक राजकुमारी बन गया हो ।

एक दिन शाम को मां ने अपने कमरे में बुलाकर मुझसे कहा, "सनु, पंडित जी के घर से आम और मिठाई आयी है, खाकर देख ।"

मां जानती थीं, मुझे पच्चीस आम खाने के लिए देने पर ऊपर से और पच्चीस आम देने पर ही बात बन पाती थी । इसलिए उन्होंने जीभ के रस-भरे रास्ते से मन को बुलावा दिया । काशीश्वरी उनकी गोद में बैठी थी । याद बहुत कुछ धुंधला गयी है, लेकिन ऐसा याद है कि उसके जूड़े में पन्नी लिपटी हुई थी और देह पर कलकत्ता की दुकान की एक साटिन की जाकिट थी—नीले और लाल रंग की लेस और फीते का वह जैसे जीता-जागता तालमेल था । जहां तक याद है—रंग सांवला था, भौंहें खूब घनी थीं; और आंखें पालतू जानवर की तरह बिना किसी हिचक के ताक रही थीं । चेहरे का काफी हिस्सा जरा भी याद नहीं आ रहा है; शायद विधाता के कारखाने में उसका गढ़ना अभी भी पूरा नहीं हुआ था, केवल उसका थोड़ा-सा हिस्सा ही तैयार हुआ था । और जो हो, देखने में निहायत भलीमानस जैसी लगती थी ।

मेरी छाती भीतर ही भीतर फूल उठी । मन ही मन सोचा, यह पन्ना-जड़ी जूड़े वाली जाकेट से घिरी चीज सोलहों आने मेरी है—मैं इसका मालिक हूं, मैं इसका देवता हूं । और सभी अनमोल चीजों के लिए तपस्या करनी पड़ती है, बस इसी एक चीज के लिए नहीं; अपनी कानी उंगली उठाने की देर थी, ईश्वर यह वरदान देने के लिए मेरी खुशामद करते फिर रहे थे । मां को मैं बराबर देखता आ रहा था, स्त्री शब्द का क्या मतलब है, यह मुझे इसी जरिये से मालूम हुआ था । मैंने देखा था, पिता और सभी व्रतों से नाराज रहते थे, लेकिन सावित्री व्रत के समय वे मुंह से चाहे जो कहें, मन ही मन बड़ी खुशी महसूस करते । मां उन्हें

प्यार करती थीं, यह जानता हूं। पर पिता जी न जाने किस बात पर नाखुश हो जाएं, किस पर झल्ला उठें, मां के मन में इसका जो डर हमेशा बना रहता, पिता जी का सारा पौरुष इसी के रस को सबसे ज्यादा ग्रहण करता । पूजा से देवताओं का तो शायद कुछ ज्यादा आता-जाता नहीं, क्योंकि वह उनका वाजिब पाना है, लेकिन शायद आदमी के लिए पाना अधिकार की हद पार कर जाना है, इसीलिए उसका लालच उसे आपे से बाहर कर देता है। उस लड़की के रंग-रूप के खिचाव ने उस दिन मुझ पर असर नहीं किया था, लेकिन उसके लिए पूजनीय हूं, यह बात उस चौदह साल की उम्र में ही मेरे मर्द खून में समा गयी। उस दिन बड़े गर्व के साथ आम खाये, यही नहीं, मैंने तीन आम थाली में ही छोड़ दिये, जो मेरी जिन्दगी में पहले कभी नहीं हुआ; और सारी दोपहर उसी के बारे में सोचने में बीती।

उस दिन काशीश्वरी को पता नहीं चला कि मेरे साथ उसका रिश्ता किस तरह का था, लेकिन घर जाते ही शायद जान गयी थी। उसके बाद जब भी उससे भेंट होती, उसे घबराहट के मारे छिपने को भी जगह नहीं मिलती थी। मुझे देखकर उसकी यह घबराहट मुझे बड़ी अच्छी लगती। मेरा वजूद दुनिया की किसी एक जगह में, किसी शक्ल में बहुत जोर का असर रखता है, अपने बारे में यह रसदार बात मुझे बड़ी मजेदार लगती थी। मुझे देखकर भी कोई डर सकता या शरमा सकता है या ऐसा कुछ कर सकता है, यह बड़ा अजीब था। काशीश्वरी भागकर अपने को छिपा लेने से ही मुझे जता जाती कि वह दुनिया खास तौर से पूरी तरह बहुत गहराई से जुड़े होकर मेरी ही थी।

इतने वक्त के खालीपन के बाद अचानक पल-भर में ऐसी महत्वपूर्ण गौरव की जगह पा जाने की वजह से कुछ दिन तक मेरे सिर में खून सन-सनाता रहा। पिता जी जिस तरह जिम्मेदारी की या रसोई की या बात-बर्ताव की कमियों को लेकर मां को परेशान किये रहते थे, मैं भी मन ही मन उन्हीं के नक्शे-कदम पर चलने को तैयार होने लगा। पिता जी की मर्जी के खिलाफ कोई काम करते वक्त मां जिस तरह ध्यान से कई बड़ी अच्छी-अच्छी तरकीबों से काम करतीं, अपने ख्याल में मैंने काशीश्वरी

को भी उसी रास्ते पर बढ़ते देखा। बीच-बीच में मन ही मन में उसको खुले दिल से अचानक नोटों की गड्डियों से लेकर हीरों के गहने तक भेंट करने लगा। किसी-किसी दिन खाने पर बैठने के बाद भी वह खाना नहीं खा सकी और जंगले के पास बैठकर आंचल के छोर से आंसू पोंछती रही। यह कोमल दृश्य भी मैंने कल्पना की आंखों से देख लिया और यह मुझे बहुत बुरा लगा था, यह नहीं कह सकता। छोटे बच्चे ज्यादा से ज्यादा अपने पर भरोसा करें, इस बारे में पिता जी बहुत जागरूक थे। अपना कमरा ठीक करना, अपने कपड़े वगैरह रखना, सब मुझे अपने हाथों करना पड़ता। लेकिन, मेरे दिल पर गृहस्थी को लेकर जो खाका बहुत साफ खिंच गया था, उसे लेकर कुछ नीचे लिखता हूं। कहना बेकार है, मेरे पुरखों के इतिहास में ठीक इसी तरह का वाक्य एक बार पहले भी पेश आया था; मेरा यह ख्याल बुनियादी नहीं है। एक यह है—रविवार को दोपहर के खाने के बाद मैं खाट पर तकिया लगाये, पैर फैलाये, अधलेटी हालत में अखबार पढ़ रहा था। हाथ में हुक्के की नली थी। हलकी झपकी में नीचे गिर गयी। बरामदे में बैठी काशीश्वरी धोबी को कपड़े दे रही थी; मैंने उसे बुलाया, उसने झटपट आकर नली उठाकर मेरे हाथ में दे दी। मैंने उससे कहा, 'देखो, मेरे बैठने के कमरे में दायीं ओर की अलमारी के तीसरे खाने में नीली जिल्द वाली मोटी-सी अंग्रेजी की एक किताब है, उसे ले तो आओ!' काशी नीले रंग की कोई किताब ले आई। मैं बोला, 'अरे, यह नहीं; वह इससे मोटी है, और उसकी पीठ पर सुनहरे अक्षरों में उसका नाम लिखा है।' इस बार वह एक हरे रंग की किताब ले आयी। मैं उसे धड़ से जमीन पर पटककर गुस्से से उठ खड़ा हुआ। यह देखकर काशी का मुंह उतर गया और उसकी आंखें छलछला आईं। मैंने जाकर देखा, किताब तीसरे खाने में नहीं थी, पांचवें खाने में थी। हाथ में किताब लिए चुपचाप आकर बिछौने पर लेट गया। लेकिन काशी से अपनी भूल का कोई जिक्र नहीं किया। वह सिर झुकाये उदास होकर धोबी को कपड़े देने लगी और अपनी नाजानकारी की वजह से घरवाले के आराम में अड़चन डाली है, इस कसूर को किसी भी तरह नहीं भूल सकी।

पिता जी डकैती की तहकीकात कर रहे थे और मेरे दिन इस तरह बीत रहे थे। इधर मेरे बारे में पंडित जी का बर्ताव और बातचीत का लहजा बात-बात में बदल गया। वे सब बातें सीधे मुझसे न कहकर जैसे तीसरे आदमी से कहलवाई जातीं और वे मेरी सद्भावना में सराबोर रहती थीं।

तभी डकैती की तहकीकात खत्म हो गयी, पिता जी घर लौट आये। मैं जानता हूं, मां ने तय किया था कि वे धीरे-धीरे मौका देखकर घुमा-फिराकर पिता जी की मनपसन्द सब्जी बनाने के साथ-साथ धीरे-धीरे सहज बनाते हुए बात छेड़ेंगी। पिता जी पंडित जी को लालची समझकर नापसन्द करते थे; मां पहले पंडित जी की हल्की-सी बुराई, साथ ही उनकी घरवाली और लड़की की जी-भर तारीफ करके बात शुरू करतीं। लेकिन बदकिस्मती से खुशी के मारे पेट में बात न पचने के कारण पंडित जी के द्वारा यह बात चारों ओर फैल चुकी थी। विवाह पक्का है, मुहूर्त देखा जा रहा है, यह बात बताने में उन्होंने किसीको बाकी नहीं छोड़ा। यहां तक कि ब्याह के दिनों में उनको कुछ दिनों के लिए सरिश्तेदार बाबू के पक्के दालान की जरूरत पड़ेगी, किसी मौके पर यह बात भी उन्होंने तय कर ली थी। शुभ काम में भरसक सभी उनको सहयोग करने के लिए राजी हो गये थे। पिता जी की अदालत में वकीलों का दल चन्दा करके विवाह का खर्च अपने ऊपर लेने के लिए राजी था। स्थानीय एंट्रेंस स्कूल के सेक्रेटरी वीरेश्वर बाबू का तीसरा लड़का तीसरे दर्जे में पढ़ता था, उसने चांद और कुमुद के रूपक का सहारा लेकर इसी बीच में ब्याह के बारे में त्रिपदी छन्द में एक कविता लिख डाली। सेक्रेटरी साहब ने वह कविता, गली-कूचे में जहां जो मिला, उसीको घेर-घेर कर सुनाई। लड़के के बारे में गांव के लोग बहुत सारी उम्मीद लगा बैठे थे।

ऐसी हालत में लौटने पर बाहर ही पिता जी ने यह खुशी की खबर सुन ली। उसके बाद मां का रोना-धोना औरघर-भर की घबराहट, नौकरों पर बिला वजह जुर्माना, इजलास में बड़ी तेजी से मामले डिसमिस करना और बड़ी सख्ती से सजा देना, पंडित जी की अपने काम से छुट्टी और पन्ना-जड़ी बालों की चोटी वाली लड़की काशीश्वरी को लेकर उनका गायब

होना—और छुट्टी खत्म होने के पहले ही मां से बिलग करके मेरा जबर्दस्ती कलकत्ता में बिठा देना—मेरा मन फुटबाल की फटी गेंद जैसा पिचक गया; आसमान में, हवा में उसकी उछल-कूद बिलकुल बन्द हो गयी।

2

मेरे ब्याह के रास्ते में शुरू में ही यह बाधा आ पड़ी—उसके बाद मेरे बारे में तितली की बेकार की तरफदारी बार-बार होती रही है। उसका पूरा ब्यौरा देने का चाव नहीं है—अपनी इस असफलता के इतिहास के एक-दो छोटे-छोटे नोट छोड़ जाऊंगा। बीस साल की उम्र होने के पहले ही मैं अच्छी तरह एम० ए० पास करके आंखों पर चश्मा लगाकर और मूंछों की रेखा को ताव देने लायक बनाकर बाहर निकला था। पिता जी तब रामपुर हाट या नोआखाली या बारासात या ऐसी ही किसी जगह में थे। इतने दिन तक तो शब्दों के समुद्र को मथ करके डिग्री-रूपी रत्न हासिल किया; अब अर्थ के समुद्र के मथने की बारी आयी। पिता जी ने अपने बड़-बड़े मददगार साहब लोगों को याद किया तो देखा, कि उनके जो सबसे बड़े मददगार थे, वे मर चुके थे, उनसे जो कम थे, वे पेंशन लेकर विलायत चले गये थे, जो और भी कम थे उनकी पजाब बदली हो गयी थी, और जो बंगाल में बचे रह गये थे उनमें से ज्यादातर शुरू में प्रार्थी को भरोसा देते, लेकिन आखिर में उसका कुछ बन नहीं पाता। मेरे दादा जी जब डिप्टी थे तब मददगार और सहयोगियों का बाजार ऐसा ठण्डा नहीं था। इसलिए तब नौकरी से पेंशन और पेंशन से नौकरी एक ही खानदान में नदी के इस पार उस पार आने-जाने वाले खेल की तरह चलती रहती। अब दिन खराब थे। इसलिए पिता जी जब निराश होकर सोच रहे थे कि उनके खानदान को गवर्नमेंट आफिस के ऊंचे ओहदे से व्यापार के दफ्तरों के नीचे पलड़े पर उतरना चाहिए या नहीं, तभी एक पैसे वाले ब्राह्मण की एक-मात्र लड़की उनके ध्यान में आयी। ब्राह्मण ठेकेदार था, उनकी आमदनी का रास्ता आंखों के सामने न होकर छुपकर धरती के नीचे की ओर से आता था। वे जब बड़े दिन के मौके पर नारंगियां या और कोई सौगात का सामान ओहदे के हिसाब से

भेजने में मशगूल थे, तभी उनके मुहल्ले में मेरा आना हुआ। पिता जी का मकान उनके घर के सामने था, बीच में एक सड़क थी। कहना बेकार है कि डिप्टी का एम० ए० पास लड़का लड़की वाले पक्ष के लिए 'प्रांशु-लभ्य फल' था। इसीलिए ठेकेदार महाशय ने मुझे समेट लेने के लिए दोनों हाथ फैला दिये। उनकी लम्बी बांहों के बारे में पहले ही बता दिया है —आखिर वे बांहें फैलाए हुए डिप्टी महाशय के दिल तक बड़े आराम से पहुंच गये। लेकिन मेरा मन तब वहां से भी काफी ऊपर था।

क्योंकि मेरी उम्र तब बीस पार करने पर थी, तब खरे स्त्री-रत्न के अलावा और किसी रत्न के लिए मेरी कोई रुचि नहीं थी, केवल यही नहीं, उस समय भी भावुकता की कौंध मेरे मन में साफ झलक रही थी। मतलब सहधर्मिणी शब्द का जो मतलब मेरे मन में था, उस मतलब का बाजार में चलन नहीं था। आज के समय में हमारे देश में दुनिया चारों ओर से सिकुड़ गयी है; सोचने, मेहनत करने के मौके पर मन को ज्ञान और भाव में लगाये रखना और बर्ताव के मौके पर उसको इस दुनिया के बहुत तुच्छ चीजों के मुताबिक छोटा बनाना, यह मैं मन में भी बर्दाश्त नहीं कर पाता था। जिस औरत को आदर्श के रास्ते की साथी बनाना चाहूं, वही औरत घर-गृहस्थी की कैद में पैरों की बेड़ी बन जाये, और हर एक चोट से झंकार करके पीछे खींचती रहे, इस तरह के हठ को कबूल करने के लिए मैं तैयार नहीं था। असल बात यह थी कि हमारे देश के हंसी-मजाक में 'आधुनिक' कहकर जिस पर व्यंग्य करते हैं; कालेज के हाल से निकलकर मैं उसी तरह का पूरा आधुनिक बन गया था। हमारे समय में इन आधुनिकों का झुण्ड आज की बनिस्बत बहुत बड़ा था। ताज्जुब है कि वे असल में विश्वास करते थे कि समाज को मानकर चलना पिछड़ापन है और उसको घसीटे लिए चलना ही विकास।

सो यों मैं श्री सनत्कुमार एक जबर्दस्ती, कई तरह से ताकतवर, लड़की के ब्याह के लिए गरजमंद एक आदमी के रुपयों की खुली थैली के मुंह के सामने आ पड़ा। पिता जी बोले, 'शुभस्य शीघ्रम्'। मैं चुप लगाए रहा; सोचा, कि कुछ देख-सुन, सोच-समझ तो लूं। आंख-कान खुले रखे, थोड़ा-सा देखा और बहुत-सा सुना। लड़की गुड़िया जैसी और खूब-

सूरत थी। उसको देखकर यह नहीं लगता था कि वह आदमी के कायदों को मानकर बनाई गई है। उसका एक-एक बाल सम्भालकर, उसकी भौंहें आंक कर न जाने किसने उसे अपने हाथों से गढ़ा था। वह संस्कृत का 'गंगास्तव' जुबानी सुना सकती थी। उसकी मां पत्थर के कोयले तक को गंगाजल से धोकर खाना पकाती थीं, अपने में जिन्दगी को सहारा देने वाली धरती को तरह-तरह के जीवों को साथ पलने देने के कारण उसको छूने में वे हमेशा परहेज करती थीं; वे ज्यादातर साफ पानी का ही व्य-वहार करती थीं; क्योंकि पानी के जीव मछली वगैरह मुसलमान नहीं हैं और पानी में प्याज नहीं होता। उनकी जिन्दगी का खास काम अपनी देह, घर, कपड़े-लत्ते, हाण्डी-बटलोई, खाट-पलंग, बरतन वगैरह साफ करना और मांजना था, सारा काम पूरा करने में लगभग ढाई बज जाते। अपनी लड़की को उन्होंने अपने हाथ से एड़ी से चोटी तक इस तरह मांजकर रख दिया था कि उसमें अपना मन या अपनी इच्छा नाम की कोई बला नहीं रह गई थी। किसी प्रबन्ध में कितनी भी दिक्कतें क्यों न हों; उनका पालन करना उसके लिए आसान होता, अगर उसकी कोई माकूल वजह उसको नहीं समझा दी जाती। खाना बनाते समय अच्छा कपड़ा नहीं पहनती कि कहीं खराब न हो जाय; उसने छाया तक का विचार करना सीखा था। वे जिस तरह पालकी में जाकर ही गंगा नहाती थीं, वैसे ही अठारह पुराणों से घिरी रहकर गृहस्थी चलती-फिरती। नियम-निष्ठा पर मेरी मां को भी बहुत विश्वास था लेकिन उनसे भी ज्यादा विश्वास किसी और को हो और उसको लेकर वह मन-ही-मन घमण्ड करे, यह वे नहीं सह सकती थीं। इसलिए जब मैंने उनसे कहा, "मां, मैं इस लड़की के लायक नहीं हूं।" तो उन्होंने हंसकर कहा, "ठीक है, कलयुग में ऐसी लड़की मिलना मुश्किल है।"

मैं बोला, "तो मैं विदा लूं?"

मां बोलीं, "यह क्या, सुनूं तो क्या तुझे पसन्द नहीं आई? क्यों, लड़की देखने में तो अच्छी है।"

मैंने कहा, "मां, घरवाली केवल निहारने के लिए तो होती नहीं, उसमें अक्ल भी होनी चाहिए।"

मां बोलीं, "देखो जरा, इसी बीच तुझे उसके कमअक्ल होने की ऐसी कौन-सी मिसाल हाथ लग गई है?"

मैंने कहा, "यदि अक्ल होती तो आदमी दिन-रात ये बेकार के काम लेकर रह ही नहीं पाता। घुट-घुटकर मर जाता।"

मां का मुंह सूख गया। वे जानती थीं, उस ब्याह के बारे में पिता जी ने दूसरी ओर लगभग बात पक्की कर ली है। वे यह भी जानती थीं कि पिता जी अक्सर यह भूल जाते थे कि दूसरे आदमियों में भी इच्छा नाम की बला हो सकती है। दरअसल, पिता जी अगर बहुत ज्यादा गुस्सा या जबर्दस्ती न करते तो शायद आगे उस पौराणिक गुड़िया के साथ ब्याह करके मैं भी एक दिन जोर-शोर के भक्तिभाव से नहाकर, दैनिक कर्म, व्रत-उपवास करते-करते सद्गति को पा लेता। मतलब, मां के ऊपर अगर यह ब्याह कराने का वजन रहता तो वे हाथ में समय लेकर धीरज से सुयोगानुसार पल-पल अच्छा अवसर देखकर कान में मंत्र देकर हर पल आंसू बहाकर काम पूरा करा सकती थीं। पिता जी जब बार-बार डांटने-फटकारने लगे तो मैंने उनसे नाउम्मीद होकर कहा, "आपने मुझे बचपन से ही खाने पीने, चलने-फिरने में खुद पर भरोसा करने का उपदेश दिया है, केवल ब्याह के मौके पर ही क्या, यह अपने-आप पर पूरा भरोसा नहीं चलेगा?" कालेज में लाजिक में पास होने के अलावा न्याय-शास्त्र के भरोसे किसी ने कभी कामयाबी हासिल की हो, यह मैंने नहीं देखा। ठीक तरकीब बहसबाजी की आग के सामने कभी पानी का काम नहीं करती, बल्कि तेल का ही काम करती है। पिता जी ने सोच रखा था कि उन्होंने लड़की वालों को बात दे दी है। इसलिए ब्याह के जायज होने के बारे में इससे बड़ा सबूत और कुछ नहीं हो सकता और अगर मैं उनको याद करा देता कि पण्डित जी को एक दिन मां ने भी बात दी थी, फिर भी इसी बात के कारण केवल मेरा ब्याह ही नहीं टूटा, साथ ही पण्डित जी की रोजी भी चली गई—तो इसको लेकर फौजदारी हो जाती। बुद्धि-विचार और पसन्द की बनिस्बत पवित्रता की भावना, मन्त्र-तन्त्र, क्रिया-कर्म कहीं ज्यादा अच्छे हैं। उनकी कविताई भारी-भरकम और सुन्दर होती है, उनसे लगाव रखना बहुत अच्छा और उसका नतीजा बहुत बढ़िया

होता है; सिम्बोलिज्म ही आइडियलिज्म है वगैरह बातें पिता जी आजकल मुझे सुना-सुनाकर वक्त-बेवक्त इनका खुलासा करते हैं। मैंने जीभ रोक रखी थी, लेकिन मन को तो चुप नहीं रख सकता था। जो बात मुंह तक आकर लौट जाती थी वह यह थी कि, 'अगर आप यह सब मानते हैं तो जब पालते हैं तो मुर्गी क्यों पालते हैं ?' और भी एक बात मन में आती। पिता ने ही एक दिन मुहूर्त्त, व्रत-पर्व, विधि-निषेध, दान-दक्षिणा को लेकर अपनी परेशानी या नुकसान होने पर मां को कड़ी भाषा में इन सब कामों की व्यर्थता बताकर फटकारा था। मां ने तब बेबसी स्वीकार की थी, औरतों को स्वभाव से ही नासमझ मान सिर झुकाकर खीझ के धक्के को सहते हुए वे ब्राह्मण-भोजन की भारी तैयारी में लग गई थीं। लेकिन विश्वकर्मा ने जीव को लॉजिक के पक्के सांचे में ढालकर नहीं बनाया है। इसलिए फलां आदमी की बात या काम में कोई तालमेल नहीं है, यह कहकर उसको काबू में नहीं किया जा सकता, सिर्फ नाराज किया जा सकता है। न्याय-शास्त्र की दुहाई देने से अन्याय की चोट का जोर बढ़ जाता है—जो लोग पालिटिकल या गृहस्थी के एजीटेशन में विश्वास रखते हैं, उनको यह बात याद रखनी चाहिए। जब घोड़ा अपने पीछे की गाड़ी को नावाजिब समझकर उस पर दुलत्ती झाड़ता है तो गाड़ी तो बनी ही रहती है, ऊपर से उसके पैर भी जख्मी हो जाते हैं। जवानी के जोर में थोड़ी-सी बहस करने पर मेरी भी वैसी हालत थी। पुराण की लड़की के हाथों से छुटकारा तो मिला, लेकिन पिता के आधुनिक युग के तहबील का भरोसा भी खो दिया। पिता ने कहा, "जाओ तुम खुद-मुख्तियार बनो।"

मैंने पांव छूकर कहा, "जो आज्ञा।"

मां बैठी-बैठी रोने लगीं।

पिता के दायें हाथ ने तो जरूर मुंह मोड़ लिया, लेकिन बीच में मां के साथ होने के कारण कभी-कभी मनीआर्डर के हरकारे मिल जाते थे। बादलों ने बारिश बन्द कर दी, लेकिन छिपे-छिपे कोमल रात में ओस के पानी का इस्तेमाल होने लगा। उसी के बल पर काम शुरू कर दिया। ठीक उनासी रुपये से शुरू किया था। अब उस कार-बार में जितनी पूंजी लगी थी, वह कोई डाह करने लगता इतना न होने पर भी बीस लाख

रुपये से कम की नहीं थी।

तितली की पलटन मेरे पीछे-पीछे फिरने लगी पहले। जो सब दरवाजे बन्द थे अब उनमें कुण्डी नहीं रही। मुझे याद है एक दिन जवानी के ज्वार में एक सोलहसाला युवती के लिए (उम्र का अंक अब के आस्थावान् पाठकों के डर से कुछ सहन करने लायक बनाकर कहा है) अपने दिल को तैयार किया था। लेकिन पता लगा कि लड़की के मां-बाप की निगाह सिविलियनों की ओर थी—कम-से-कम बैरिस्टर के नीचे उनकी निगाह नहीं जाती थी। मैं उनकी आकांक्षा के मीटर के जीरो प्वाइंट से भी नीचे था। लेकिन, बाद में उसी घर में एक दिन केवल चाय ही नहीं, लंच खाया, रात में डिनर के साथ लड़कियों के साथ ह्विस्ट[1] खेला, उनके मुंह से एकदम ठेठ विलायती अंग्रेजी में बातें सुनीं। मेरी कठिनाई यह थी कि मैंने रसेल्स, डेजर्टेड विलेज, और एडिसन स्टील पढ़कर अपनी अंग्रेजी पक्की की थी, इस लड़की से होड़ बदना मेरे बस की बात नहीं थी। ओ माई, ओ डियर, ओ डियर वगैरह शब्द मेरे मुंह से ठीक आवाज में निकलना ही नहीं चाहते थे। मेरा जितना ज्ञान था उससे मैं बिलकुल आसान अंग्रेजी में बड़ी मुश्किल से हाट-बाजार में खरीद-फरोख्त कर सकता था, लेकिन बीसवीं सदी की अंग्रेजी में प्यार की बातें करने की बात याद आते ही मेरा प्यार ही भाग खड़ा होता। और उसके मुंह में बंगला का जिस तरह अकाल था उससे उसके साथ शुद्ध बंकिमी भाषा में मीठी बातें करने की कोशिश करने पर घाटा ही रहता। उससे पूरी मजदूरी न वसूल होती। खैर, जो हो, ऐसी विलायती मुलम्मेदार लड़की भी एक दिन मेरे लिए सुलभ थी। लेकिन बन्द दरवाजे के छेद से जो मायानगरी देखी थी दरवाजा खुलने पर फिर उसका पता नहीं चला। तब मुझे बार-बार लगने लगा कि मेरी व्रत निभाने वाली बेकार के नियम-कायदों को दुहराने के चक्कर में रात-दिन लगी अपनी जिस भोथरी अक्ल को तसल्ली देती थीं, वे लड़कियां भी ठीक वैसी ही अक्ल से विलायती चाल-चलन, अदब-कायदों के सारे मामूली से मामूली रिवाजों के चक्कर में दिन पर दिन, साल के बाद साल सहज ही में खुशी-खुशी से काट देती हैं। जिस

1. ताश का एक खेल

तरह किसी से छूकर नहाने में जरा भी लापरवाही देखते ही नफरत से उनके रोंगटे खड़े हो जाते, ये भी एक्सेण्ट में थोड़ी कमी होने या कांटे-चम्मच के इस्तेमाल में थोड़ी भूल देखते ही ठीक उसी तरह कसूरवार आदमी की इंसानियत में शक करने लगतीं। वे देशी गुड़िया थीं, ये विदेशी गुड़ियां। ये मन के कहने के मुताबिक नहीं चलतीं, आदत की चाबी या कल ही इनको चलाती है। नतीजा यह हुआ कि मुझे मन ही मन औरत जात के ही ऊपर चिढ़ हो गई; मैं मानने लगा कि जब उनमें अक्ल की ही कमी है तब वे नहाने, आचमन-उपवास, क्रियाकर्म की अनदेखी करके जिएं भी तो कैसे! किताबों में पढ़ा था कि ऐसे जीव भी होते हैं जो बराबर चक्कर काटते रहते हैं। लेकिन आदमी चक्कर नहीं लगाता, आदमी चलता है। उन जीवों के बढ़े हुए आकार के साथ ही क्या ईश्वर ने अभागे मर्दों का ब्याह का रिश्ता तय किया है?

दूसरी ओर जैसे-जैसे उम्र बढ़ने लगी वैसे ही ब्याह के बारे में दुविधा भी बढ़ने लगी। आदमी की एक उम्र होती है जब वह फिक्र किये बिना ही ब्याह कर सकता है। वह उम्र पार हो जाने पर ब्याह करने में दिलेरी की जरूरत होती है। मैं उन लापरवाहों की भीड़ में नहीं था। इसके अलावा कोई अच्छी-भली लड़की बिना वजह एकदम मेरे साथ क्यों ब्याह कर लेगी, यह मैं किसी तरह नहीं समझ सकता था। सुना था प्यार अंधा होता है लेकिन यहां उस अंधे के ऊपर तो कोई जवाबदेही थी नहीं। दुनिया की अक्ल के पास तो दो से भी ज्यादा आंखें होती हैं—वे आंखें जब बिना नशे के मेरी ओर ताकने लगतीं, तब वे मुझमें क्या देख पाती थीं, मैं यही सोचा करता था। मुझमें जरूर ही बहुत सारे गुण थे, लेकिन उनको पहचानने में तो देर लगती। एक ही नजर में तो समझे नहीं जा सकते थे। मेरी नाक में जो छोटाई है, उसको अक्ल की तेजी ने पूरा कर दिया था, यह मैं जानता था; लेकिन नाक तो रहती है। जो दिखना चाहिए उसे और अक्ल को ईश्वर ने कोई शक्ल नहीं दी है। जो हो, जब देखता कि कोई अच्छी उम्र की लड़की बहुत कम वक्त के नोटिस पर भी मुझसे ब्याह करने में जरा भी एतराज न करती, तब लड़कियों के बारे में मेरा विश्वास और भी कम हो जाता और मैं लड़की होता तो श्री सनत्कुमार

की अपनी छोटी नाक की लम्बी सांस से उसकी उम्मीद और उसका घमंड धूल में मिल जाते ।

इस तरह ब्याह के बोझ से बरी होकर मेरी नाव बीच-बीच में किनारे को तो छू जाती, लेकिन घाट पर आकर नहीं लगी । घरवाली के अलावा दुनिया की दूसरी चीजें, काम-धंधे की तरक्की के साथ बढ़ती चली गईं। एक बात भूल गया था, उम्र भी बढ़ती जा रही है । अचानक एक वाकये ने इसकी याद दिला दी ।

अबरख की खान खोजते-खोजते छोटा नागपुर के शहर में जाकर देखा, पण्डित जी वहां शाल के जंगल की छाया में एक छोटी-सी नदी के किनारे अच्छा-खासा घर बनाये बैठे हैं। उनका लड़का कहां काम करता था । इसी शाल के जंगल में मेरा तम्बू लगा था । उन दिनों देश-भर में मेरी धन-दौलत की चर्चा थी । पण्डित जी ने कहा कि आने वाले वक्त में मैं बहुत बड़ा आदमी बनूंगा, यह वे पहले ही जानते थे । हो सकता है, लेकिन यह बात उन्होंने अजीब ढंग से छिपा रखी थी। इसके अलावा किन लच्छनों से उनको यह मालूम हुआ था, यह मैं नहीं कह सकता । शायद बड़े लोगों को पढ़ाई के वक्त 'षत्वणत्व ज्ञान'[1] नहीं होता। काशीश्वरी ससुराल में थी। इसलिए बेरोक-टोक पण्डित जी के घर का आदमी हो गया । कई साल पहले उनकी घरवाली गुजर चुकी थी लेकिन वे नतनियों से घिरे थे । सब उनकी अपनी नहीं थीं, उनमें से दो उनके स्वर्गवासी बड़े भाई की थीं। बूढ़े ने इनसे अपने बुढ़ापे के दूसरे हिस्से को कई रंगों से रंगीन बना लिया था । उनके 'अमरुकशतक', 'आर्या सप्तशती', 'हंसदूत', 'पदांकदूत' के श्लोकों की धारा पत्थर के सिल के चारों ओर पहाड़ी नदी की फेन-भरी धारा की तरह इन लड़कियों को घेरकर हंसते हुए गूंज रही थी ।

मैंने हंसकर पूछा, 'पण्डित जी, मामला क्या है ?'

उन्होंने कहा, "बेटा, तुम्हारी अंग्रेजी विद्या में कहा है कि शनि ग्रह चांद का हार पहने रहते हैं—यह मेरा वही चांद का हार है ।"

---

1. 'ष' और 'ण' के इस्तेमाल की जानकारी ।

उस गरीब परिवार का यह सब कुछ देखकर अचानक मुझे याद आया कि मैं अकेला हूं। मुझे महसूस हुआ, मैं अपने बोझ से खुद थक गया हूं। पंडित जी नहीं जानते थे कि वे बूढ़े हो गए हैं, लेकिन मैं हो गया था। यह मैंने साफ-साफ जान लिया था कि मैं बूढ़ा हो गया हूं। कहने का मतलब यह था कि अपने चारों ओर की दुनिया को पारकर आया हूं। चारों ओर से ढील पड़ जाने से दरारें हो गई हैं। ये दरारें रुपयों से नहीं भरी जा सकतीं। धरती से रस नहीं मिल रहा था, केवल चीजें इकट्ठी कर रहा था, इसकी निरर्थकता को आदतन भूले हुए रहा जा सकता था। लेकिन जब पंडित जी का घर देखा तब समझा, मेरे दिन नीरस थे, रातें खाली। पंडित जी पूरी तरह से तय किये बैठे थे कि उनकी बनिस्बत मेरी किस्मत अच्छी थी—यह बात सोचकर मुझे हंसी आई। इस सपने दिखाती दुनिया को एक न दिखता आनन्द का संसार घेरे हुए है। उस आनन्द के संसार के साथ हमारी जिन्दगी का जुड़ाव न रहने पर हम त्रिशंकु के जैसे शून्य में घूमते रहते हैं। पंडित जी के साथ वह जुड़ाव था, मेरे साथ नहीं, यही फर्क था। मैं आराम कुर्सी के दोनों बाजुओं पर पैर रखकर सिगरेट पीते-पीते सोचने लगा, आदमी की जिन्दगी के चार आश्रमों के चार देवता हैं। बचपन में मां, जवानी में पत्नी, जवानी और बुढ़ापे के बीच की उम्र में कन्या-पुत्रवधू, बुढ़ापे में नतनी, नत-बहू। इस तरह और से आदमी अपना खालीपन भरता है। इस ज्ञान ने मुझे उस सनसनाते शाल के जंगल में मुग्ध कर लिया। मन के सामने अपने आने वाले बुढ़ापे के आखिरी छोर तक झांककर देखा, देखकर उसके बेहद सूनेपन से मन हाहाकार करने लगा। उस रेतीले रास्ते से होकर मुनाफे के बोझ को सिर पर लादे न जाने कहां जाकर मुंह के बल गिरकर मर जाऊंगा। अब और देर करना ठीक न होगा। इस समय चालीस को पार कर गया हूं—जवानी की बाक़ी थैली को झटक लेने के लिए आधी सदी रास्ते के किनारे बैठी हुई है, उसकी लाठी का सिरा यहां से दिखाई दे रहा है। अब जेब की बात छोड़कर थोड़ी जिन्दगी की बात सोच देखूं। लेकिन जिन्दगी का जो हिस्सा रुका रह गया है उसमें तो लौटकर जाया नहीं जा सकता। तो भी उसके छेद में पैबन्द लगाने का पूरा वक्त अब भी नहीं बीता है।

काम से यहां से पच्छिम के एक शहर में जाना पड़ा। वहां विश्वपति बाबू एक धनी बंगाली महाजन थे। उनके साथ मुझे काम के बारे में बातें करनी थीं। आदमी बड़े होशियार थे, इसलिए उनके साथ कोई बात पक्की करने में काफी वक्त लगता था। एक दिन खीझकर जब सोच रहा था, इनके साथ काम करने में मेरे लिए आसानी नहीं रहेगी। यही नहीं, नौकर को अपना सामान पैक करने के लिए कह चुका था, तभी विश्वपति बाबू शाम को मुझसे आकर बोले, "आपकी तो जरूर ही तरह-तरह के लोगों से जान-पहचान होगी, अगर आप जरा ध्यान दें तो एक विधवा की जान बच सकती है।"

घटना यह है :

नंदकृष्ण बाबू बरेली में पहले एक बंगाली अंग्रेजी स्कूल में हेडमास्टर होकर आए थे। बड़ा अच्छा काम करते थे। सभी को अचम्भा हुआ था —ऐसा योग्य, इतना पढ़ा-लिखा आदमी घर छोड़कर, इतनी दूर, मामूली वेतन पर नौकरी करने क्यों आया। केवल इम्तिहान पास कराने के लिए ही उनका नाम हो, ऐसा नहीं, सभी भले कामों में वे सहयोग देते थे। इस बीच न जाने कैसे बात फैल गई कि उनकी घरवाली सुन्दर जरूर है, लेकिन अच्छे खानदान की नहीं है, किसी मामूली जात की लड़की है। यहां तक कि उनके छूने पर पानी पीने लायक नहीं रहता और दूसरे अन्दरूनी अच्छे गुण खत्म हो जाते हैं। जब उनको सभी ने घर दबाया तो वे बोले, "हां, जात की छोटी है, लेकिन फिर भी मेरी घरवाली है।" तब सवाल उठा, "ऐसा ब्याह जायज कैसे हुआ ?" जिन्होंने सवाल किया उनसे नंदकृष्ण बाबू ने कहा, "आपने तो शालग्राम को गवाह बना करके एक के बाद एक —दो औरतों के साथ ब्याह किया है, और एक से दो बना लेने से भी खुश नहीं हैं, इसके बहुत-से सबूत दिये हैं। शालग्राम की बात नहीं कह सकता लेकिन ईश्वर जानते हैं, मेरा ब्याह आपके ब्याह की बनिस्बत ज्यादा जायज है—रोज, हर पल जायज है—आपके साथ मैं इससे ज्यादा कुछ कहना नहीं चाहता।"

जिनसे नंदकृष्ण ने यह बात कही, वे खुश नहीं हुए। इस पर उनमें लोगों को नुकसान पहुंचाने की बेजोड़ ताकत भी थी। नतीजतन इस

फसाद की वजह से नंदकृष्ण ने बरेली छोड़कर इस शहर में आकर वकालत शुरू की। आदमी बहुत कट्टर मिजाज के थे—भूखे रहने पर भी झूठा मुकदमा वे किसी तरह न लेते थे। पहले उनको इससे चाहे कितनी दिक्कतें हुई हों, आखिर में तरक्की होने लगी। क्योंकि हाकिम का उन पर पूरी तरह विश्वास था। घर बनाकर जरा जमकर बैठे ही थे कि देहात में सूखा पड़ा। देहात उजाड़ हो रहा था। जिनके ऊपर मदद के लिए आई चीजें बांटने का जिम्मा था, उनमें से किसी-किसी ने चोरी की थी। मजिस्ट्रेट से उनके यह कहने पर मजिस्ट्रेट ने उनसे कहा, "सच्चे आदमी मिलें कहां?" उन्होंने कहा, "अगर मुझ पर भरोसा करें तो इस काम की कुछ जिम्मेदारी मैं ले सकता हूं।"

उनको जिम्मेदारी सौंप दी गई और यह जिम्मेदारी ढोते हुए ही एक दिन दोपहर को मैदान में पेड़ के नीचे वे मर गये। डाक्टर ने कहा, "उनके हृदय की धड़कन बन्द होने से मौत हुई है।"

इतनी कहानी मेरी पहले से ही जानी हुई थी। न जाने कैसे किसी ऊंचे आदर्श के बहाव में मैंने अपने क्लब में उन्हीं की बात चलाकर कहा था, "इन नंदकृष्ण के समान जो आदमी दुनिया में नाकामयाब होकर सूखकर मर गये हैं—न नाम छोड़ने की फिक्र की, न रुपया जमा किया—वे ही भगवान् के सहयोगी होकर दुनिया को ऊपर की ओर···"

इतना कह पाया था कि पाल तनी हुई नाव के एकाएक किनारे से छू जाने जैसी मेरी बात बीच में बन्द हो गई। क्योंकि, हममें से एक खूब धनी और इज्जतदार आदमी अखबार पढ़ रहे थे—वे अपने चश्मे के ऊपर से मेरी ओर नजर डालकर बोल उठे, "हियर-हियर।"

जाने दो। सुना गया कि नंदकृष्ण की विधवा घरवाली अपनी इकलौती लड़की के साथ मुहल्ले में रहती है। दीवाली की रात को पैदा होने के कारण बाप ने उसका नाम दीपाली रखा था। विधवा को किसी समाज में जगह न मिलने पर उन्होंने बिलकुल अकेली रहकर इस लड़की को लिखना-पढ़ाना सिखाकर पाला-पोसा। तब लड़की की आयु पच्चीस से ऊपर होगी। मां की देह रोगी थी और उम्र भी कम नहीं थी—किसी दिन वे मर जाएंगी, इस लड़की का कहीं कोई ठिकाना नहीं रहेगा।

विश्वपति ने मुझसे आग्रह करते हुए कहा, "यदि इसके लिए कोई दूल्हा ढूंढ़ दें तो बड़ा धर्म हो !"

विश्वपति को नीरस, स्वार्थयुक्त और बेवकूफी-भरे कामों में लगा हुआ समझकर मैंने मन-ही-मन उसकी कुछ अनदेखी की थी। विधवा की लावारिस लड़की के लिए उनका ऐसा आग्रह देखकर मेरा मन पसीज गया। सोचा, पुरानी दुनिया के मरे हुए मैमथ के पेट में से खाद्यान्न का बीज निकालकर, बोकर देखा गया है कि उसमें अंकुर निकलते हैं—उसी तरह आदमी की आदमियत गहरी कब्र के नीचे रहते हुए भी पूरी तरह से मरना नहीं चाहती।

मैंने विश्वपति से कहा, "लड़का मेरा जाना-पहचाना है, कोई बाधा नहीं आएगी। आप लोग बात और ब्याह का दिन पक्का करें।"

"लेकिन लड़की को देखे बिना तो और···"

"बिना देखे ही हो जाएगा।"

"लेकिन, लड़के को अगर धन-दौलत का लालच हो तो वह तो कुछ ज्यादा नहीं है। मां के मरने पर केवल यह घर मिलेगा। शायद थोड़ा-बहुत और मिल जाए।"

"लड़के के पास अपनी सम्पत्ति है, उसके लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।"

"उसका नाम, ब्यौरा वगैरह···"

"यह अभी नहीं बताऊंगा, क्योंकि बात फैलने पर ब्याह में अड़चन आ सकती है।"

"लड़की की मां को तो इसका कुछ ब्यौरा देना पड़ेगा।"

"कह दें, उस आदमी में दूसरे आम आदमियों की तरह गुण-दोष दोनों हैं। दोष इतने ज्यादा नहीं हैं, जिनके लिए सोचना पड़े, गुण भी इतने ज्यादा नहीं हैं कि आदमी ललचा ही जाए। जहां तक मैं जानता हूं, इन बातों से लड़कियों के मां-बाप उसे खास तौर से पसन्द करते हैं; खुद लड़कियों को अपने मन की बात का ठीक पता नहीं चल पाता।"

विश्वपति बाबू इस मामले से बहुत अहसानमन्द हुए तो उनके लिए मेरी आस्था बढ़ गयी। इसके पहले जिस कार-बार में उनके साथ मेरी

दरें तय नहीं हो रही थीं, उनमें नुकसान सहकर भी मैं रजिस्ट्री प्रमाण-पत्र पर सही कराने के लिए राह देख रहा था। जाते वक्त वे कह गये, "लड़के से कहिएगा, और बातों में जैसी भी हो, ऐसी गुणों वाली लड़की कहीं नहीं मिलेगी।"

जिस लड़की को समाज में आसरा और सम्मान नहीं मिला है, उसे अगर मन में जगह दे दी जाये तो क्या वह अपने-आप को सौंप देने में जरा भी कंजूसी करेगी? जिस लड़की की उम्मीद बड़ी होती है, उसीकी उम्मीद टिकी रह जाती है। लेकिन इस दीपाली का दीया मिट्टी का था, इसलिए मेरे मिट्टी के घर के कोने में उसकी रोशनी की हेठी न होगी।

शाम को रोशनी जलाकर विलायती अखबार पढ़ रहा था कि सूचना मिली, एक लड़की मुझसे मिलने आई है। घर में कोई औरत नहीं थी, इसलिए मैं परेशान हो उठा। कोई भला-सा उपाय सोच पाऊं, इससे पहले ही लड़की ने कमरे में आकर पैर छू लिए। बाहर से किसीको विश्वास नहीं होगा, लेकिन मैं बहुत ही शर्मीला आदमी हूं। न मैंने उसके मुंह की ओर देखा, न कोई बात की। वह बोली, "मेरा नाम दीपाली है।"

गला बहुत मीठा था। हिम्मत करके मुंह की ओर देखा, वह चेहरा बुद्धि और लुनाई से भरा था। सिर पर पल्ला नहीं था। सादी देसी धोती आजकल के फैशन में पहने हुए थी। क्या बात कहूं, यही सोच रहा था कि इतने में वह बोली, "मेरे ब्याह के लिए आप कोई कोशिश न करें।"

और जो हो, दीपाली के मुंह से इस तरह की एतराज की बात की मैंने कल्पना नहीं की थी। मैंने सोच रखा था, ब्याह के प्रस्ताव से उसके देह मन जान से भर उठेंगे। पूछा, "जाने-अनजाने किसी भी आदमी से तुम ब्याह नहीं करोगी?"

उसने कहा, "नहीं, किसी आदमी से नहीं।"

वैसे तो मन की दुनिया की बनिस्बत बाहर की दुनिया से ही जान-पहचान ज्यादा है। खास कर औरत का मन मेरे लिए बंगला हिज्जे से भी मुश्किल है, तो भी बात का सीधा मतलब मुझे सच्चा मतलब नहीं लगा। मैंने कहा, "जो लड़का मैंने तुम्हारे लिए चुना है वह उपेक्षा करने लायक नहीं है।"

दीपाली बोली, "मैंने उनकी उपेक्षा नहीं की, लेकिन मैं ब्याह नहीं करूंगी।"

मैंने कहा, "वह आदमी भी सच्चे मन से तुम्हें चाहता है।"

"लेकिन, नहीं, मुझसे ब्याह करने के लिए न कहें।"

"अच्छा है, नहीं कहूंगा लेकिन क्या मैं तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकता ?"

"मेरे लिए लड़कियों के किसी स्कूल में पढ़ाने का काम दिलाकर मुझे यहां से कलकत्ता ले चलें तो मैं बड़ा उपकार मानूंगी।"

मैं बोला, "काम मौजूद है, दिला सकता हूं।"

यह बात पूरे तौर पर सच नहीं थी। लड़कियों के स्कूल के बारे में मैं क्या जानूं ? लेकिन लड़कियों का स्कूल खोलने में तो कोई बुराई नहीं है ?

दीपाली ने कहा, "आप मेरे घर जाकर एक बार मां से इस बात पर जिक्र करना पसन्द करेंगे ?"

मैंने कहा, "मैं कल सवेरे ही आऊंगा।"

दीपाली चली गयी। मेरा अखबार पढ़ना खत्म हो गया। छत पर जाकर चौकी पर बैठ गया। तारों से सवाल किया, "कोटि-कोटि योजन दूर रहकर तुम क्या सचमुच चुपचाप बैठे-बैठे आदमी के काम के सारे जरिये और जिन्दगी के जरूरी रिश्ते बुनते रहते हो ?"

इसी बीच बिना कोई सूचना दिये विश्वपति का मझला लड़का श्रीपति अचानक छत पर आ हाजिर हुआ। उसके साथ जो बातचीत हुई उसका सार यह है :

श्रीपति दीपाली से ब्याह करने के जिद के लिए समाज छोड़ने के लिए तैयार था। पिता कहते थे, ऐसा बुरा काम करने पर वे उसे घर से निकाल देंगे। दीपाली कहती, उसके लिए इतना बड़ा दुख, बेइज्जती और त्याग कोई कबूल करे, इस लायक वह नहीं है। इसके अलावा श्रीपति बचपन से ही धनी घर में पला है; दीपाली की राय में वह समाज से बाहर और बेसहारा होकर गरीबी का दुख नहीं झेल सकेगा। इसी को लेकर बहस छिड़ रही थी, किसी तरह इसका फैसला नहीं हो पा रहा

था। ठीक इस उलझन के वक्त मैंने बीच में पड़कर उनके बीच एक और आदमी को खड़ा करके समस्या की गुत्थी बहुत उलझा दी। इसीसे श्रीपति मुझसे इस नाटक में से फ्रूफ-शीट के कटे अंश की तरह निकल जाने के लिए कह रहा था।

मैं बोला, "जब आ ही गया हूं तो फिर निकलूंगा नहीं। और अगर निकलूंगा तो उलझन काटकर ही निकलूंगा।"

ब्याह का दिन नहीं बदला गया, केवल दूल्हा बदल गया। मैंने विश्वपति का आग्रह पूरा कर दिया, लेकिन उन्हें तसल्ली नहीं हुई। दीपाली की बात मैं पूरी नहीं कर पाया, लेकिन उसके रंग-ढंग से लगा वह खुश थी। पता नहीं स्कूल में काम खाली था या नहीं, लेकिन मेरे घर में लड़की की जगह खाली थी, वह भर गयी। मुझ जैसा फालतू आदमी बेकार नहीं है, यह मेरे अर्थ ने ही श्रीपति के सामने साबित कर दिया। उसका घर का दीया मेरे कलकत्ता के घर में ही जला। सोचा था कि वक्त पर न न किये गये रुके हुए ब्याह की कसर बेवक्त ब्याह करके पूरी करनी पड़ेगी, लेकिन देखा ऊपर वाला खुश हो तो दो-एक क्लास लांघकर प्रमोशन मिल जाता है। आज पचपन वर्ष की उम्र में मेरा घर नतनियों से भर गया है। ऊपर से एक नाती भी आ धमका है, लेकिन विश्वपति बाबू के साथ मेरा कार-बार बन्द हो गया है—क्योंकि उन्हें लड़का पसन्द नहीं आया।

□□

प्रसिद्ध लेखकों का कथा-संसार

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जीवन स्मृति (आत्म-कथा)	25/-
प्रजापति (उपन्यास)	20/-
करुणा (उपन्यास)	20/-
गोरा (उपन्यास)	32/-
गीतांजलि (काव्य)	20/-
चार अध्याय/मालंच (उपन्यास)	14/-
उजड़ा घर/दो बहनें (उपन्यास)	14/-
काबुलीवाला (कहानियां)	14/-
दृष्टि-दान (कहानियां)	14/-
योगायोग (उपन्यास)	30/-
बांसुरी/मुक्तधारा (नाटक)	14/-
बहूरानी (उपन्यास)	14/-

प्रेमचन्द

वरदान	15/-
कर्मभूमि	25/-
सेवासदन	22/-
कायाकल्प (भाग-1)	16/-
कायाकल्प (भाग-2)	16/-
प्रेमाश्रम (भाग-1)	18/-
प्रेमाश्रम (भाग-2)	18/-
रंगभूमि (भाग-1)	22/-
रंगभूमि (भाग-2)	22/-
निर्मला	15/-
गोदान	25/-

बाम्हन की बेटी	14/-
चरित्रहीन	22/-
दत्ता	14/-
काशीनाथ	14/-
श्रीकांत	18/-
बिराज बहू	14/-
विप्रदास	14/-
लेन-देन	20/-
चन्द्रनाथ	15/-
देहाती दुनिया	16/-

बंकिमचंद्र

कृष्णकांत का वसीयतनामा	16/-
दुर्गेशनन्दिनी	14/-
कपालकुण्डला	14/-
चन्द्रशेखर	15/-
आनन्दमठ	16/-

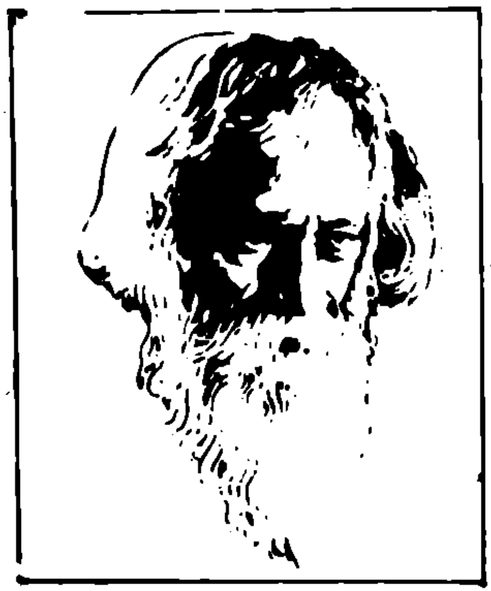
आचार्य चतुरसेन

वयं रक्षामः	18/-
ईदो	18/-
आभा	15/-
सोना और खून (भाग-1)	18/-
सोना और खून (भाग-2)	18/-
राज्याभिषेक	12/-
सह्याद्रि की चट्टानें	14/-
ठहरती हुई दीवार	14/-
उदयास्त	18/-
वैशाली की नगरवधू	20/-
बगुला के पंख	15/-
यादें	16/-

रवीन्द्र रचनावली

क्षुधित पाषाण

तथा अन्य कहानियां



- विश्व के महान् साहित्यकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक ऐसे अग्रणी लेखक थे, जिन्हें संसार-भर में अपार ख्याति मिली और जिन्हें नोबल पुरस्कार जैसे सम्मान से विभूषित किया गया। उनकी अनेक कृतियां प्रमुख भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनूदित होकर चर्चित हुईं।

'क्षुधित पाषाण' रवि बाबू की सर्वाधिक चर्चित कहानियों का महत्वपूर्ण संग्रह है। सभी चुनी हुई कहानियां बेहद मार्मिक और रोचक हैं, जो लम्बे समय तक पाठक के मन - मस्तिष्क को उद्वेलित करती रहेंगी।

एक पत्थर है, जो भूखा है। वह एक मनुष्य है, पत्थर दिल इंसान! परन्तु उसे भूख है, तो किसकी! एक मानवीय त्रासदी को उकेरते हुए इसमें मनुष्य की आंतरिक मनोवृत्तियों का जायजा लिया गया है।

सरस्वती सीरीज़

हिन्द पॉकेट बुक्स

16/-

ISBN 81-216-0187-8